

# श्री अरविन्द कर्मधारा



भीतर से उद्घाटन और ऊपर से अवतरण ये दो योगसिद्धि के मार्ग हैं।  
-श्री अरविन्द

15 अगस्त 2017

वर्ष 47

अंक 3



15 अगस्त 2017 को स्वतंत्रता दिवस व श्री अरविन्द के जन्मदिन के उपलक्ष पर समस्त आश्रम गण मार्च पास्ट करते हुये व श्री अरविन्द को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुये ।



मातृ सरोवर के उद्घाटन पर तारा दीदी सहित सब उल्लास प्रगट करते हुये

# श्री अरविन्द कर्मधारा

## श्री अरविन्द आश्रम- दिल्ली शाखा का मुखपत्र

15 अगस्त, 2017 - वर्ष 47 - अंक 3

संस्थापक  
श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर 'फकीर'

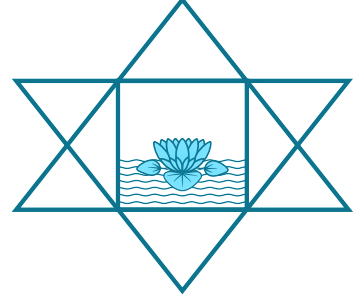
सम्पादक  
त्रियुगी नारायण वर्मा

सहसम्पादन  
रूपा गुप्ता  
अपर्णा रॉय

विशेष परामर्श समिति  
कु0 तारा जौहर, सुश्री रंगम्मा

ऑनलाइन पब्लिकेशन ऑफ श्री अरविन्द आश्रम  
दिल्ली शाखा

कार्यालय  
श्री अरविन्द आश्रम दिल्ली-शाखा  
श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली- 110016  
दूरभाष: 26524810, 26567863  
आश्रम वैबसाइट  
(www.sriarobindoashram.net)



### विद्यार्थियों से

राष्ट्र के इतिहास में ऐसे समय आते हैं जब भगवान् उसके सामने एक ऐसा लक्ष्य रख देते हैं जिसके लिये शेष सभी चीजों को न्यौछावर कर देना पड़ता है, चाहे वे अपने आप में कितनी ही महान् और उत्कृष्ट क्यों ना हों। हमारी मातृभूमि के लिये ऐसा समय आ गया है जब उसकी सेवा के सिवाय कोई और चीज प्यारी नहीं है, जब सब कुछ को उसी उद्देश्य की ओर मोड़ना है। अगर तुम अध्ययन करो: उसकी सेवा के लिये अपने तन, मन और आत्मा को प्रशिक्षित करो। तुम अपनी रोजी कमाओ ताकि उसकी सेवा के लिये तुम जी सको। तुम विदेश जाओ तो इसलिये कि वह ज्ञान ला सको जिसके द्वारा तुम उसकी सेवा कर सको। काम करो, ताकि वह समृद्ध बने। कष्ट सहो, ताकि वह सुख पाये। सब कुछ इस सलाह में आ जाता है।

श्री अरविन्द



## इस अंक में...

1. ॐ आनन्दमयी चैतन्यमयि सत्यमयि परमे (प्रार्थना और ध्यान)	3	18. तपस्वी श्री ज़ौहर छोटे नारायण शर्मा	31
2. सम्पादकीय	4	19. सावित्री -विमला गुप्ता	33
3. श्री अरविंद का संदेश	6	20. श्री अरविन्द का उत्तरपाड़ा भाषण	39
4. आध्यात्मिक जीवन के मार्ग में कठिनाइयाँ श्री अरविन्द	8	21. बोध विनोद सुरेन्द्रनाथ जौहर	44
5. अप्रसन्नता और कपट	11	22. आश्रम में पिछले तिमाही के कार्यक्रम	47
6. अमृत कण श्रीमाँ	12		
7. भारत के पास आत्मा का ज्ञान है श्रीमाँ	13		
8. बनाना और तोड़ना श्रीमाँ	14		
9. चाचा जी की कलम से (मेरा भाग्य)	17		
10. पथ पर (बुढ़ापा) ज्ञानवती गुप्ता	18		
11. नाद ब्रह्म में लीन संगीतकार पं. विजयशंकर मिश्र	21		
12. कवितायें	22		
13. महिला आन्दोलन सरोजिनी नायडू	23		
14. श्री माँ के ध्वजारोहक श्री सुधीर सरकार (त्रियुगी नारायण)	25		
15. आनंद सागर में आज ज्वार (रवीन्द्रनाथ ठाकुर)	28		
16. बांग्लादेश-श्री अरविन्द केन्द्र में मातृ सरोवर का उद्घाटन गोविन्दा	29		
17. श्रद्धा सुमन रूपा गुप्ता	30		

# ॐ आनन्दमयी चैतन्यमयि सत्यमयि परमे (प्रार्थना और ध्यान)



प्रभो! अगम सत्य! तू हमारी उपलब्धि से, वह चाहे प्रभावकारी ही हो, सदा छूटकर आगे निकल जाता है; हम तेरे विषय में चाहे कितना ही जान लें, तेरे शाश्वत रहस्य का चाहे कितना भी अंश उपलब्ध कर लें, तू सदा अज्ञात ही रहेगा। यह होते हुये भी हम पूर्ण एवं अनवरत यत्न के साथ, उन अनेकों मार्गों को एक करते हुये जो तेरी ओर जाते हैं, एक उमड़ती हुयी अदम्य बाढ़ के समान, आगे बढ़ना चाहते हैं; समस्त बाधाओं को पार करते हुये, समस्त पदों को उठाते हुये, समस्त घटनाओं को छिन्न-भिन्न करते हुये, समस्त अन्धकार को भेदकर हम तेरी ओर, सदा तेरी ओर, एक ऐसे शक्तिशाली और अदम्य वेग से आगे बढ़ें कि समस्त

जनसमूह हमारे पीछे खिंचा चला आये और पृथ्वी, तेरी नवीन और सनातन उपस्थिति के प्रति सचेतन होकर, अन्त में यह समझ ले कि उसका सच्चा लक्ष्य तू है और वह तेरी सर्वोच्च उपलब्धि की समस्वरता और शान्ति में निवास करने लगे।

हमें सदा अधिकाधिक सिखा,  
हमें अधिकाधिक आलोकित कर,  
हमारा अज्ञान दूर कर,  
हमारे मन को प्रकाशित कर,  
हमारे हृदयों को रूपान्तरित कर,  
और वह प्रेम प्रदान कर जो कभी मन्द नहीं होता, तथा अपने मधुर विधान को समस्त प्राणियों में प्रस्फुटित कर।  
हम तेरे हैं, सदा के लिये तेरे।

श्रीमाँ



## सम्पादकीय

**15 अगस्त, 2017** श्री अरविंद की 145वीं जन्मशती के रूप में मनाया जा रहा है। यह दिन हम सब के लिये बहुत भाग्यशाली दिवस है जब श्री अरविंद ने इस धरा पर मनुष्य मात्र के उद्धार के लिये जन्म लिया था।

उनके जीवन का उद्देश्य सिर्फ आत्मोद्धार नहीं था, वरन उन्होंने अपने जीवन के माध्यम से सारी मानवजाति को यह संदेश दिया कि तुम इस मनुष्य देह की कैद में बँध कर अपना जीवन पराधीन की भाँति जीने के लिये विवश नहीं हो। मानव देह की सीमायें तुम्हें बाँध नहीं सकतीं। तुम्हारी संकल्पशक्ति से यह देह भी अपनी सीमाओं से उपर उठ कर तुम्हें अतिमानव के पद पर प्रतिष्ठित होने की राह देगी।

श्री अरविन्द का जन्म 15 अगस्त सन् 1872 में कलकत्ता में हुआ था। 15 अगस्त अपनी स्वतंत्रता का राष्ट्रीय पर्व है। यह जन्माष्टमी का मुहूर्त था। ऐसा होना निरे संयोग की बात नहीं है। श्री अरविन्द का आध्यात्मिक प्रयास, भारत की स्वतंत्रता और एक नये युग का निर्माण ये तीनों चीजें अलग ना होकर एक ही उद्देश्य के अलग अलग अध्याय हैं। सत्य की यह एक अनिवार्य शर्त थी और उसके लिये बाह्य रूप में वे तब तक प्रयत्न करते रहे जब तक उन्हें ऊपर से निश्चित रूप में यह वादा नहीं कर दिया गया कि भारत शीघ्र स्वतंत्र हो जायेगा।

15 अगस्त के इस राष्ट्रीय पर्व के बारे में श्री अरविन्द ने राष्ट्र के नाम संदेश देते हुए स्वयं कहा था:

"... यह दिन भारत के लिये पुराने युग की समाप्ति और नये युग का आरम्भ सूचित करता है। परन्तु हम इसे एक स्वाधीन राष्ट्र के रूप में अपने जीवन और कार्यों के द्वारा ऐसा महत्वपूर्ण दिन भी बना सकते हैं जो सम्पूर्ण जगत के लिये, सारी मानव जाति के सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक भविष्य के लिये नव युग लाने वाला सिद्ध हो।... इसके भारतीय स्वाधीनता दिवस भी हो जाने को मैं कोई आकस्मिक संयोग नहीं मानता बल्कि यह मानता हूँ कि जिस कर्म को लेकर मैंने अपना जीवन आरम्भ किया था उसको मेरा पथ प्रदर्शन करने वाली भागवती शक्ति ने इस तरह मंजूर कर लिया है और उस पर अपनी मुहर भी लगा दी है और वह कार्य पूर्ण रूप से सफल होना आरम्भ हो गया है।"

भारत तो एक शक्ति है, एक आध्यात्मिक भावना की जीवंत ऊर्जा और उसके जीवन का मूलभूत तत्व ही है इसके प्रति निष्ठा। अपने गुण के कारण के कारण ही यह एक अमर राष्ट्र है। यही वह चीज है जो इसके स्थायित्व का कारण है और जो आश्चर्यजनक रूप से बार-बार इसे संजीवन और अभ्युत्थान दिया करती है।

‘भगवान् यह चाहते हैं कि हम, आप जैसे हैं वही बनें, यूरोप नहीं बन जाएँ। फिर से जीवन पाने के लिये हमने अपने से भिन्न दूसरों के जीवन-धर्म को अपनाया है। हमको अपने भीतर जीवन और शक्ति के स्रोत को ढूँढ़ निकालना चाहिये। हमें अपने अतीत को जान कर भविष्य के प्रयोजनों के लिये इसका उपयोग करना चाहिये। सबसे पहले हम अपने-आपको जानें और प्रत्येक वस्तु को भारत के सनातन जीवन और प्रकृति के अनुरूप ढालें।”

यह अंक आप सबको सुरेन्द्रनाथ जौहर हमारे, आपके प्रिय चाचाजी के जन्मदिवस 13 अगस्त की भी बधाई देता है जिन्होंने अपने पूरे परिवार सहित अपना जीवन श्री अरविन्द व श्री माँ के चरणों में समर्पित कर दिया। अपने अथक परिश्रम से उन्होंने श्री अरविन्द व श्री माँ के कार्यों और विचारों को जनमानस तक पहुँचाया साथ ही श्री अरविन्द आश्रम की स्थापना का भागीरथ कार्य सम्पन्न किया।

आशा है आपके मानस को यह अंक सदा की भाँति देश व समाज के लिये नवीन प्रेरणादायी व उत्साहवर्धक प्रतीत होगा।

आपकी प्रतिक्रियाओं व विचारों का स्वागत है।

रूपा गुप्ता

## श्री अरविंद का संदेश

दो शक्तियाँ हैं जिनके सहयोग से यह महान और कठिन कार्य पूरा हो सकता है, जो हमारी साधना का लक्ष्य है। एक है दृढ़ और अटूट अभीप्सा जो नीचे से पुकारती है और दूसरी है भगवद्कृपा जो उपर से उसका उत्तर देती है। किन्तु परम भगवद्कृपा केवल प्रकाश और सत्य की स्थितियों में ही कार्य करेगी, असत्य और अज्ञान द्वारा लादी हुयी

स्थितियों में नहीं क्यों कि यदि वह असत्य की माँगों के सामने झुक जाये तो वह अपने उद्देश्य को ही विफल कर देगी। प्रकाश और सत्य की स्थितियाँ ही एकमात्र वे स्थितियाँ हैं जिनमें परमशक्ति नीचे उतरेगी और केवल वह उच्चतम अतिमानसिक शक्ति ही, ऊपर से उतर कर और नीचे से खुल कर, भौतिक प्रकृति

पर सफलता पूर्व काबू पा

सकती है, इसकी कठिनाइयों को नष्ट कर सकती है और उसे जीत कर अपने हाथों में ले सकती है। इसके लिये पूरा और सच्चा समर्पण, भगवान की शक्ति की ओर उदघाटन और स्वयं को अनन्य रूप से भगवान के लिये खोलना होना चाहिये। जो सत्य ऊपर से उतर रहा है उसे हर क्षण पूरी तरह अपनाना चाहिये। पार्थिव प्रकृति पर मन, प्राण और शरीर की जिन शक्तियों और उसके रूपों का शासन चल रहा है, उनके मिथ्यापन को हर क्षण पूरी तरह अस्वीकार करना चाहिये।

यह समर्पण सम्पूर्ण और सत्ता के अंग प्रत्यंग को लिये हुए होना चाहिये। इतना ही काफी नहीं है कि हृत्पुरुष स्वीकार कर ले, मन का उच्चतर भाग मान ले, अन्तःप्राण आधीन हो जाये और शरीर की चेतना उसका प्रभाव अनुभव करे, बल्कि सत्ता के किसी भी हिस्से में, यहाँ तक कि बाहरी से बाहरी अंग में भी कोई

ऐसी चीज नहीं होनी चाहिये

जिसमें किसी प्रकार का संकोच हो, जो किसी संशय, अस्पष्टता और छल कपट के पीछे छिपी हो, जो विद्रोह करती हो, या इन्कार करती हो।

यदि सत्ता का एक हिस्सा तो समर्पण करे लेकिन दूसरा अपने आपको रोक ले, अपने ही रास्ते चले या अपनी ही शर्तें रखे, तो समझ लो कि जब जब ऐसा होता है

तब तब तुम अपने आप ही

भगवद्कृपा को अपने से दूर हटा देते हो।

यदि तुम अपनी भक्ति और अपने समर्पण के पीछे अपनी इच्छाओं, अहंकार की माँगों और प्राण के हठों को छिपाये रखो, या फिर तुम इन चीजों को सच्ची अभीप्सा के स्थान पर ला बिठाओ या इन्हें सच्ची अभीप्सा के साथ मिला दो और इन्हें भागवती शक्ति पर लादना चाहो तो रूपान्तर करने के लिये तुम्हारा भगवत्कृपा को पुकारना बेकार है। यदि एक ओर से या एक भाग में तुम अपने आपको सत्य के लिये खोलो और दूसरी ओर के दरवाजे



लगातार विरोधी शक्तियों के लिये खोलते जाओ तो यह आशा व्यर्थ है कि भगवदकृपा तुम्हारा साथ देगी। तुम्हें मन्दिर को साफ रखना होगा, यदि तुम उसमें सजीव रूप से भगवान की प्रतिष्ठा करना चाहो। यदि जब जब शक्ति आये और अपने साथ सत्य को लाये तब तब तुम उसकी ओर से पीठ फेर लो और फिर से, निकाले हुए असत्य को बुला लो, तो तुम भागवत कृपा को सहायता ना देने का दोष नहीं दे सकते। दोष है तुम्हारे अपने संकल्प के मिथ्याचार का, तुम्हारे अपने समर्पण की कमियों का। यदि तुम सत्य के लिये पुकार करो लेकिन साथ ही तुम्हारे अंदर कोई चीज असत्य, अज्ञान और अभागवत का वरण करती रहे या इन्हें पूरी तरह ना छोड़ना चाहे, तो तुम्हारे उपर आक्रमण का मार्ग सदा खुला रहेगा और भागवदकृपा तुमसे पीछे हट जायेगी।

पहले यह पता लगाओ कि तुम्हारे अंदर क्या मिथ्या है, क्या अंधकारमय है, फिर दृढ़ता से उसे निकाल बाहर करो। तभी तुम रूपान्तर के लिये भगवान की शक्ति को पुकारने के अधिकारी बनोगे। यह कल्पना ना करो कि भगवान को निवेदित किये गये घर में सत्य और असत्य, प्रकाश और अंधकार, समर्पण और स्वार्थ साथ साथ रहने दिये जायेंगे। रूपान्तरण सर्वांगीण होना चाहिये, अतः उसके मार्ग में आने वाली बाधाओं का त्याग भी सर्वांगीण होना चाहिये। यह मिथ्या धारणा त्याग दो कि तुम चाहे भगवान की शर्तों का पालन ना भी करो, भागवती तुम्हारे लिये, तुम्हारी माँग के अनुरूप सब कुछ करने के लिये बाधित है। अपने समर्पण को सच्चा और सम्पूर्ण बनाओ तभी तुम्हारे लिये बाकी सब कुछ किया जायेगा।

यह मिथ्या और आलस्य भरी आशा भी त्याग दो कि भगवती शक्ति ही तुम्हारे लिये समर्पण भी कर देगी। भगवान भगवती शक्ति के प्रति तुम्हारा आत्म समर्पण माँगते हैं, उसे तुम पर लादते नहीं। तुम हर पल स्वतन्त्र हो, जब तक अटल रूपान्तर ना हो जाये तब तक भगवान को अस्वीकार करने और उनका त्याग करने, अपने आत्मदान को वापस ले लेने के लिये स्वतन्त्र हो- शर्त यह है कि तुम उसका आध्यात्मिक फल भोगने के लिये भी तैयार रहो। तुम्हारा समर्पण अपनी इच्छा से और मुक्त भाव से होना चाहिये। वह एक जीवित सत्ता का समर्पण होना चाहिये, निर्जीव कठपुतली या पराधीन यन्त्र का नहीं।

तामसिक निष्क्रियता को ही सच्चा समर्पण मान लेने की भूल हमेशा हुआ करती है, किन्तु तामसिक निष्क्रियता से कोई सत्य और सशक्त वस्तु नहीं आ सकती। भौतिक प्रकृति अपनी तामसिक निष्क्रियता के कारण ही अन्धकारपूर्ण या अदिव्य प्रभाव का शिकार बना करती है। भगवती शक्ति की क्रिया के प्रति प्रसन्न, सशक्त और सहायक आधीनता होनी चाहिये। सत्य के ज्ञान से दीप्त अनुयायी की, अन्धकार और असत्य से लड़ने वाले अन्तर योद्धा की और भगवान के सच्चे सेवक की आज्ञाकारिता होनी चाहिये।

यही है सच्चा भाव और जो इसे ग्रहण कर सकते और बनाये रख सकते हैं, केवल उन्हीं की श्रद्धा निराशाओं और कठिनाइयों के बीच अटल बनी रहेगी और वे अग्निपरीक्षा में से होकर परम विजय और महान रूपान्तर की प्राप्ति करेंगे।



# आध्यात्मिक जीवन के मार्ग में कठिनाइयाँ

## श्री अरविन्द

(एक साधक को दिये इस उत्तर में श्री अरविन्द ने आध्यात्मिक जीवन में आती बाधाओं का बहुत बारीकों से विश्लेषण किया है। यह लेख अवश्य ही साधकों के लिये मार्गदर्शक व प्रेरक होगा।)

**तुम्हारे** आध्यात्मिक जीवन और कठिनाइयों के विषय में दो या तीन ऐसी बातें हैं जिन्हें तुम्हें बताना मैं आवश्यक समझता हूँ।

प्रथम तो मैं यह चाहूँगा कि तुम उस विचार से मुक्त हो जाओ कि कठिनाइयों को उत्पन्न करने वाली चीज इतना अधिक तुम्हारी अपनी सत्ता का अंग है कि तुम्हारे लिये आन्तर जीवन जीना असम्भव है। आन्तर जीवन सदैव सम्भव होता है यदि प्रकृति में, वह अन्य वस्तुओं से कितनी ढँकी क्यों ना हो, एक

ऐसी दिव्य सम्भावना विद्यमान है जिसके द्वारा अन्तरात्मा अपने को अभिव्यक्त कर सके तथा मन और प्राण में अपने सच्चे स्वरूप का भगवान् के एक अंश का निर्माण कर सके। तुम्हारे अन्दर यह दिव्य सम्भावना विशिष्ट और असाधारण मात्रा में विद्यमान है। तुम्हारे भीतर सहज-प्रकाश, सम्बोधिजन्य दृष्टि, सामंजस्य और सर्जनशील सौन्दर्य से युक्त एक ऐसी आन्तर सत्ता है जिसने अपने को ऐसे प्रत्येक समय अचूक-प्रकट किया है, जब कि वह

प्राण-प्रकृति में घिरे हुये बादलों को तितर-बितर करने में समर्थ हुई। यही वह वस्तु है जिसे माताजी ने तुम्हारे अन्दर विकसित करने तथा सामने लाने की सदा ही चेष्टा की है। जब मनुष्य में वह चीज होती है तो निराशा का कोई आधार, असम्भावना की किसी चर्चा का कोई सही कारण नहीं रहता। यदि तुम एक बार दृढ़तापूर्वक इसे अपने सच्चे आत्मा के रूप में स्वीकार कर सको, (जैसे कि वस्तुतः यह है, क्योंकि आन्तर सत्ता तुम्हारी सच्ची

आत्मा है और बाह्य सत्ता जिसके कारण कठिनाइयाँ आती हैं, ऐसी कोई वस्तु है जो बाहर से लाई जाती है, अस्थायी होती है तथा बदली जा सकती है), और यदि तुम जीवन में इसके विकास को अपना स्थायी और दृढ़ लक्ष्य बना

सच्ची सत्ता एक बार तो प्रकृति के क्षेत्र पर अधिकार कर लेती है, दूसरी बार विरोधी शक्ति द्वारा प्रयुक्त होकर निम्नतर प्रकृति इसे पीछे धकेलकर जमीन पर कब्जा कर लेती है, - और इस बात को हम अब देखने लगते हैं जब कि पहले वस्तु होती थी किन्तु उसके घटने का स्वरूप हमारे सामने स्पष्ट नहीं होता था। यदि व्यक्ति में प्रकृति का दृढ़ संकल्प हो तो वह इस विभाजन को पार कर जायेगा। उस संकल्प के चारों ओर एकीकृत प्रकृति में अन्य कठिनाइयाँ तो आ सकती हैं, पर इस प्रकार की विसंगति और संघर्ष लुप्त हो जायेंगे।

सको तो माँग स्पष्ट हो जायेगी और तुम्हारा आध्यात्मिक भविष्य प्रबल सम्भावना ही नहीं किन्तु एक ध्रुव वस्तु हो जायेगा।

ऐसा बहुधा होता है कि जब प्रकृति में इस प्रकार की असाधारण शक्ति होती है, तो बाह्य सत्ता में ऐसा कोई विरोधी तत्व पाया जाता है जो इसे बिल्कुल विरोधी प्रभाव की ओर उद्धाटित कर देता है। यही आध्यात्मिक जीवन के प्रयास को बहुधा कठिन संघर्ष का रूप दे देता है

किन्तु इस तरह के विरोध का अस्तित्व, अति उग्र रूप में होने पर भी उस जीवन को असम्भव नहीं बनाता।

शंका, संघर्ष, प्रयत्न और असफलताएँ, भूल-चूक, सुखमय और दुःखमय या अच्छी और बुरी दशाओं का, प्रकाश की ओर अन्धकार की स्थितियों का बारी-बारी से आना-जाना, ये सब मनुष्यों की सर्व सामान्य नियति है। ये योग द्वारा या पूर्णता के लिये किये गये प्रयत्न द्वारा नहीं उत्पन्न होती; केवल योग में व्यक्ति इनको बिना सोचे-समझे अनुभव करने के स्थान पर उनकी क्रियाओं और उनके कारणों के विषय में सचेतन हो जाता है, और अन्त में व्यक्ति उनसे बाहर निकलकर अधिक स्पष्ट और सुखमय चेतना में पहुँचने का मार्ग बना लेता है। साधारण जीवन अन्त तक कष्टों और संघर्षों की परम्परा रूप होता है, परन्तु योग का साधक कष्ट और संघर्ष से निकलकर मूलभूत आत्म-प्रसाद के धरातल पर आ जाता है जिसे उपरितलीय विक्षोभ तब भी छू सकते हैं पर नष्ट नहीं कर सकते, और, अन्त में सारा विक्षोभ बिलकुल समाप्त हो जाता है।

चेतना की उन अत्यन्त भयानक स्थितियों का अनुभव भी जिसमें तुम अपनी सच्ची इच्छा के विरुद्ध बातें कहते और करते हो, निराशा का कोई कारण नहीं। यह एक या दूसरे रूप में उन सबका सर्व सामान्य अनुभव है जो अपनी साधारण प्रकृति से ऊपर उठने की चेष्टा करते हैं। केवल उन लोगों को ही नहीं जो योगसाधना करते हैं पर धार्मिक मनुष्यों और उन लोगों को भी जो केवल नैतिक नियन्त्रण और आत्मोन्नति की खोज करते हैं, इस कठिनाई का सामना करना होता है। और फिर यहाँ भी, योग, या पूर्णता के लिये किये जानेवाला प्रयत्न ही इन अवस्थाओं को नहीं उत्पन्न करता, -मानव प्रकृति में एवं प्रत्येक मानव-जीवन में ऐसे परस्पर विरोधी तत्व होते हैं जो उससे इस तरह के काम करवाते हैं जिनका अनुमोदन श्रेष्ठतर मन नहीं करता। ऐसा प्रत्येक व्यक्ति के साथ,

अत्यन्त साधारण जीवन जीनेवाले अतिसाधारण मनुष्यों के साथ भी होता है। यह हमारे मनों के सामने प्रत्यक्ष और स्पष्ट तब हो जाता है जब हम अपने सामान्य बाह्य "स्व" से ऊपर उठने की चेष्टा करते हैं, क्योंकि तब हम यह देख सकते हैं कि निम्नतर तत्वों से ही उच्चतर संकल्प के विरुद्ध जानबूझकर विद्रोह करवाया जाता है। तब कुछ समय के लिये प्रकृति में एक विभाजन जैसा प्रतीत होता है, क्योंकि सच्ची सत्ता और उसे सहारा देनेवाली सब चीजें पीछे हट जाती हैं और इन निम्नतर तत्वों से अलग हो जाती हैं। सच्ची सत्ता एक बार तो प्रकृति के क्षेत्र पर अधिकार कर लेती है, दूसरी बार विरोधी शक्ति द्वारा प्रयुक्त होकर निम्नतर प्रकृति इसे पीछे धकेलकर जमीन पर कब्जा कर लेती है, - और इस बात को हम अब देखने लगते हैं। जब कि पहले वस्तु होती थी किन्तु उसके घटने का स्वरूप हमारे सामने स्पष्ट नहीं होता था। यदि व्यक्ति में प्रकृति का दृढ़ संकल्प हो तो वह इस विभाजन को पार कर जायेगा। उस संकल्प के चारों ओर एकीकृत प्रकृति में अन्य कठिनाइयाँ तो आ सकती हैं, पर इस प्रकार की विसंगति और संघर्ष लुप्त हो जायेंगे। मैंने इस विषय पर इतना अधिक इसलिये लिखा है कि तुम्हें यह गलत ख्याल दिया गया था कि योग ही इस संघर्ष को उत्पन्न करता है और यह भी कि प्रकृति में परस्पर विरोध या विभाजन लक्ष्य तक पहुँचने की अक्षमता या असम्भावना का लक्षण है। दोनों विचार बिलकुल गलत हैं और यदि तुम अपनी चेतना में उनका पूर्ण रूप से परित्याग कर दो, तो साधना अधिक सरल हो जायेगी।

यह सच है कि अन्य लोगों की तरह तुम्हारे दृष्टान्त में भी इस परस्पर विरोध को, सायाविक भागों की उस आनुवंशिक दुर्बलता ने, एक प्रकार की विशेष एवं अत्यन्त अशान्ति उत्पन्न करने वाली तीव्रता प्रदान की है जो तुम्हारे अन्दर विषाद, उदासी, बेचैनी और अपने को घोर यन्त्रणा देने वाले अन्धकार के दौरों के रूप में प्रकट

हुई है तथा जिसने तुम्हारे जीवन को बेस्वाद बना दिया है। तुम्हारी भूल यह है कि तुम सोचते हो यह ऐसी कोई वस्तु है जिससे तुम बँधे हुये हो और बच नहीं सकते, एक ऐसा भाग्य है जो तुम्हारी प्रकृति के आध्यात्मिक परिवर्तन को असम्भव बना देता है। मैंने ऐसे अन्य परिवार भी देखे हैं जो इस प्रकार की आनुवंशिक स्नायविक दुर्बलता से पीड़ित थे साथ ही जिनमें बहुधा बौद्धिक एवं कलात्मक क्षमता या आध्यात्मिक सम्भावनाओं के असाधारण गुण भी थे। हो सकता है कि 'क्ष' जैसे एक या दो व्यक्तियों ने इससे हार मान ली हो, पर अन्य लोगों ने कभी-कभी तो तीव्र विक्षोभ के काल के बाद इस दुर्बलता के कारण हुये विक्षोभों को जीत लिया; या तो यह दुर्बलता लुप्त हो गई अथवा इसने कोई ऐसा गौण या अहानिकर रूप ले लिया जिसने जीवन और उसकी क्षमताओं के विकास में कोई हस्तक्षेप नहीं किया। तो फिर तुम्हारे अन्दर यह निराशा क्यों है या तुम बिना कारण ही यह धारणा क्यों बना लेते हो कि तुम बदल नहीं सकते और तुम्हारे अन्दर यह चीज हमेशा बनी रहेगी? यह निराशा, यह विरोधी धारणा ही तुम्हारे लिये यथार्थ खतरे की चीज़ है; यह तुम्हें एक शान्त और स्थिर दृढ़ निश्चय और एक स्थायी प्रभावशाली यत्न करने से रोकती है; इसके कारण ही अधिक अन्धकारपूर्ण अवस्था लौटकर तुम्हें झुकने के लिये बाध्य करती है तथा उस विरोधी बाह्य शक्ति को अन्दर आने देती है जो तुम्हारे साथ खिलवाड़ करने और अपनी मनमानी करने के लिये इस दोष का लाभ उठाती है।

यह मिथ्या विचार ही आधी से अधिक कठिनाई उत्पन्न करता है। इसका कोई यथार्थ कारण नहीं कि अन्य अनेक लोगों की तरह तुम अपनी बाह्य सत्ता की इस लुटि पर क्यों ना विजय प्राप्त करो। केवल तुम्हारी प्राणिक प्रकृति का भाग ही इससे प्रभावित है, यद्यपि यही प्रायः शेष भाग को आच्छादित कर लेता है; तुम्हारी सत्ता के अन्य भागों को सरलता से उस उच्च सम्भावना

के योग्य एक यन्त्र बनाया जा सकता है जिसके विषय में मैंने कहा है। विशेषकर, तुम्हारे अन्दर स्पष्ट और सूक्ष्म बुद्धि है जिसका सही ढंग से उपयोग करने पर वह प्रकाश का एक अनुकूल यन्त्र बन जाती है और इस प्राणिक दोष पर विजय पाने में तुम्हारे लिये बड़ी उपयोगी हो सकती है। और यह दिव्य सम्भावना, तुम्हारी आन्तर सत्ता का यह सत्य, यदि तुम इसे स्वीकार करो तो स्वयं ही तुम्हारी मुक्ति एवं तुम्हारी प्रकृति के परिवर्तन को अवश्यम्भावी बना सकता है।

अपने अंदर इस दिव्य सम्भावना को स्वीकार करो; अपनी अन्तर सत्ता में और अपनी आध्यात्मिक नियति में श्रद्धा रखो। भगवान के अंश के रूप में इसके विकास को अपने जीवन का लक्ष्य बनाओ- क्योंकि जीवन में एक महान और गम्भीर लक्ष्य इस प्रकार की विचलित करने या असमर्थ बनाने वाली स्नायविक दुर्बलता से छुटकारा पाने के लिये एक अत्यधिक शक्तिशाली सहायक वस्तु है; इससे दृढ़ता, सन्तुलन, समग्र सत्ता को एक प्रबल सहारा तथा संकल्प को कार्य करने के लिये एक बलशाली कारण प्राप्त होता है। हम जो सहायता दे सकते हैं उसके विरुद्ध अविश्वास, निराशा या निराधार विद्रोह द्वारा अपने को बन्द किये बिना उसे स्वीकार करो। अभी तो तुम सफल नहीं हो सकते क्योंकि तुमने अपने अन्दर एक श्रद्धा, एक लक्ष्य, एक दृढ़ विश्वास स्थिर नहीं किया; अन्धकारमयी वृत्ति तुम्हारी सारी चेतना को आच्छादित करने में समर्थ हुई है। किन्तु यदि तुमने इस श्रद्धा को अपने अंदर स्थिर कर लिया हो और तुम उससे चिपटे रह सको, तो बादल अपने को और अधिक समय के लिये स्थिर नहीं रख सकेगा; अन्तरात्मा तुम्हारी सहायता के लिये आ सकेगी। तुम्हारी श्रेष्ठतर सत्ता भी सतह पर रह सकेगी; तुम्हें प्रकाश के प्रति खुला रख सकेगी और अन्तरात्मा के लिये आन्तरिक आधार को सुरक्षित कर सकेगी, चाहे बाह्य सत्ता आंशिक रूप से आच्छादित या



अस्तव्यस्त ही क्यों ना हो। जब ऐसा होता है, तब यह समझो कि विजय हो चुकी है और प्राणिक दुर्बलता का

पूर्ण निर्वासन केवल एक थोड़े से धैर्य की ही बात रह जाती है।



## अप्रसन्नता और कपट

तुम दुःखी, बहुत उदास, निरुत्साहित और अप्रसन्न हो जाते हो। "आज चीजें अनुकूल नहीं हैं, वे कल जैसी नहीं हैं, कल वे कितनी अदभुत थीं लेकिन आज वे सुखकर नहीं रहीं।"

क्यों?

क्यों कि कल तुम कम या अधिक पूर्ण समर्पण की अवस्था में थे और आज तुम उस अवस्था में नहीं रहे। इसलिये कल जो चीज इतनी सुन्दर लग रही थी आज नहीं रही। तुम्हारे अंदर खुशी थी, विश्वास था और आश्वासन था कि सब कुछ ठीक होगा। यह निश्चिति थी कि वह 'महान कार्य' सिद्ध हो जायेगा। यह सब ढँक जाता है और उसका स्थान सन्देह और असंतोष ले लेता है: 'चीजें सुन्दर नहीं हैं, जगत दुष्ट है, लोग अच्छे नहीं हैं।' कभी कभी तो बात यहाँ तक पहुँच जाती है कि कल खाना अच्छा था, आज खाना अच्छा नहीं है। जो कल था, आज भी वही है लेकिन अच्छा नहीं है-यह विचार एक बैरोमीटर है। तुम अपने आप से तुरन्त कह सकते हो कि कहीं कोई कपट पैठ गया है। यह जानना बहुत आसान है, इसके लिये कोई बहुत ज्ञानी होने की आवश्यकता नहीं है।

श्री अरविंद ने 'योग के तत्व' पुस्तक में कहा है: हम सुखी हैं या दुःखी, संतुष्ट हैं या असंतुष्ट, हम अच्छी तरह जानते हैं। यह बहुत सरल है। इसके लिये अपने आपसे पूछने की, जटिल सवाल करने की कोई जरूरत नहीं है।

जिस क्षण तुम दुःख अनुभव करने लगो, तुम उसके नीचे लिख सकते हो-'मैं सच्चा नहीं हूँ।' ये दो वाक्य साथ साथ चलते हैं।

मैं दुःखी हूँ।

मैं सच्चा नहीं हूँ।

- 'सूर्यालोक्ति पथ' से



## अमृत कण श्रीमाँ

- दूसरे पर नियंत्रण करने के लिये अनिवार्य शर्त है स्वयं अपने ऊपर पूरा-पूरा नियंत्रण पाना।
- जब तुम कोई झगड़ा शुरू करते हो तो मानों तुम भगवान् के काम के विरुद्ध लड़ाई की घोषणा करते हो।
- यथा संभव कम बोलो, काम जितना अधिक कर सकते हो करो।
- तुम जिन कठिनाइयों को आज नहीं जीत सकते, उन्हें कल जीत लोगे या फिर बाद में।
- जब कभी चीजें कठिन हो जायें तो हमें शान्त और नीरव रहना चाहिये।
- जीवन रात के अँधेरे में यात्रा है। आन्तरिक प्रकाश के प्रति जागो।
- केवल भगवान् ही हमें पूर्ण सुरक्षा दे सकते हैं।
- जहाँ कहीं सच्चाई और सद्भावना है, वहीं भगवान् की सहायता भी है।
- संकट की घड़ी में पूर्ण अचंचलता की जरूरत होती है।
- हमेशा वही करो जिसे तुम अच्छे-से-अच्छा जानते हो, चाहे वह करने में सबसे कठिन क्यों ना हो।
- अपने ऊपर संयम करने से बड़ी विजय और कोई नहीं है।
- तुम जो कुछ करो, भगवान् को हमेशा याद रखो।
- हर चीज कितनी सुन्दर, महान्, सरल और शान्त बन जाती है जब हमारे विचार भगवान् की ओर मुड़ते हैं और हम अपने आपको भगवान् को अर्पित कर देते हैं।
- हम सभी परिस्थितियों में अपने अच्छे-से-अच्छा करें और परिणाम को भगवान् के निश्चय पर छोड़ दें।
- तूफान केवल समुद्र की सतह पर है। गहराइयों में सब शान्त है।
- भागवत कृपा पर पूरा भरोसा रखो और भागवत कृपा सब तरह से तुम्हारी सहायता करेगी।
- सरल और निष्ठावान हृदय एक बड़ा वरदान है।
- सबके हृदय में भगवान् की उपस्थिति भावी और संभव पूर्णताओं की प्रतिज्ञा है।
- हम जितना अधिक जानते हैं उतना ही अधिक देख सकते हैं कि हम नहीं जानते।
- हमारे मन को नीरव और शान्त होना चाहिये परन्तु हृदय तीव्र अभीप्सा से भरा हुआ होना चाहिये।
- मन को शान्त रहना चाहिये ताकि दिव्य शक्ति उसके द्वारा समग्र अभिव्यक्ति के लिये प्रवाहित हो सके।



# भारत के पास आत्मा का ज्ञान है

## श्रीमाँ



श्री माँ जवाहर लाल नेहरू, के. कामराज, श्रीमती इन्दिरा गाँधी और लाल बहादुर शास्त्री के साथ वार्ता करती हुई

**श्रीमाँ** ने मानवीय विकास से जुड़े सभी आयामों के शैक्षणिक धरातल को अपनी दिव्य चेतना से अनुभव किया था। उनकी शिक्षाएँ मनुष्य को स्वयं के अन्वेषण की दिशा में उत्प्रेरित करने वाली रही हैं। उनका कहना था कि हमारा उद्देश्य भारत के लिये राष्ट्रीय शिक्षा-पद्धति नहीं, बल्कि समस्त संसार के लिये शिक्षा पद्धति है। एक बार किसी साधक ने देश की शिक्षा पद्धति के संदर्भ में जिज्ञासावश प्रश्न किया कि, "हमारा लक्ष्य भारत के लिये एकांतिक शिक्षा नहीं है बल्कि सारी मानव जाति के लिये आवश्यक और आधारभूत शिक्षा है। मगर, क्या यह ठीक नहीं है कि माताजी कि अपने सांस्कृतिक प्रयासों और प्राप्ति के कारण शिक्षा के बारे में भारत की अपने

तथा जगत के प्रति कुछ विशेष जिम्मेदारी है?" श्रीमाँ ने उत्तर दिया, -"हाँ, यह बिल्कुल ठीक है और अगर मेरे पास तुम्हारे प्रश्न का पूरा उत्तर देने का समय होता तो मैं जो उत्तर देती उसका यह एक भाग होता। वस्तुतः भारत के पास आत्मा का ज्ञान है पर उसने "आत्मा" को अस्वीकार किया और इस कारण बुरी तरह कष्ट पाता है।

पूर्ण शिक्षा वह होगी जो, कुछ थोड़े-से परिवर्तनों के साथ, संसार के सभी देशों में अपनाई जा सके। उसे पूर्णतया विकसित और उपयोग में लाये हुये भौतिक द्रव्य पर आत्माके वैध अधिकार को वापिस लाना होगा। मैं जो कहना चाहती थी उसका संक्षेप यही है।

भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के आने पर माताजी ने उन्हें ये संदेश दिये थे।

- भारत भविष्य के लिये काम करे और सबका नेतृत्व करे। इस तरह वह जगत में अपना सच्चा स्थान फिर से पा लेगा।

- बहुत पहले से यह आदत चली आयी है कि विभाजन और विरोध के द्वारा शासन किया जाये।

- अब एकता, परस्पर समझौते और सहयोग के द्वारा काम करने का समय आ गया है।

- सहयोगी चुनने के लिये, वह जिस दल का है उसकी अपेक्षा मनुष्य का मूल्य ज्यादा महत्वपूर्ण है।

- राष्ट्र की महानता अमुक दल की विजय पर नहीं बल्कि सभी दलों की एकता पर निर्भर है।



## बनाना और तोड़ना श्रीमाँ

**बालकों**, यह तो तुम जानते हो कि "बनाने" और "तोड़ने" के क्या अर्थ हैं।

एक सैनिक हाथ में शस्त्र लेकर तोड़ने, अर्थात्, किसी का नाश करने जाता है। एक कारीगर नक्शे बनाता है, नींवें खोदता है और फिर मनुष्यों के परिश्रमी हाथ किसान के लिये झोंपड़ा तथा राजा के लिये महल खड़ा कर देते हैं। तोड़ने से बनाना अच्छा है, पर कभी-कभी तोड़ना भी आवश्यक हो जाता है। और तुम बच्चों, तुम्हारी तो बाँहें और हाथ खूब बलिष्ठ हैं; क्या तुम केवल निर्माण ही करोगे? कभी तोड़ोगे नहीं? और यदि कभी ऐसा किया तो किसे तोड़ोगे, किसका नाश करोगे?

दक्षिण भारत के हिन्दुओं की एक प्राचीन कथा सुनो।

एक बार एक नवजात शिशु वृक्षों के एक झुरमुट में पड़ा पाया गया। तुम यह सोच सकते हो कि वह वहाँ पड़ा-पड़ा मर गया होगा, क्योंकि उसकी माँ उसे वहाँ छोड़ गयी थी और उसको वापिस ले जाने का उसका कोई विचार नहीं था। जानते हो क्या हुआ? जिस वृक्ष के नीचे वह पड़ा था, वह "ह्यूपैडल" नाम का एक विशेष प्रकार का वृक्ष था। उसके सुन्दर फूलों से मधु के समान मीठी बूँदें टप-टप उस नन्हें शिशु के मुँह में गिरती रहीं और इस प्रकार उसका पालन होता रहा। अन्त में एक भली स्त्री ने उसे देखा, वह पास के शिव मन्दिर में पूजा करने आयी थी। उसका हृदय बच्चे को देख कर द्रवित हो उठा। उसे गोद में लेकर वह घर आ गयी। क्योंकि उनका अपना पुत्र नहीं था, उसके पति ने प्रसन्न हृदय से बच्चे का स्वागत किया।

दोनों उस कुञ्ज में पड़े पाये गये अज्ञात कुलशील बालक का पालन-पोषण करने लगे। प्रारम्भ से ही उनके

पड़ोसी उन पर व्यंग्य करने लगे थे और कहते थे ना जाने किस जाति के बच्चे को ये लोग उठा लाये हैं। इस डर से कि उनके पड़ोसी इस बच्चे की खातिर उनसे नाराज ना हो जायें उन्होंने उसे एक पालने में डाल कर पालने को गोशाला की छत से लटका दिया और बच्चे की रक्षा का भार वहाँ रहने वाले एक पारिया कुटुम्ब को सौंप दिया।

कुछ वर्ष बाद वह लड़का बड़ा हुआ। शरीर के साथ-साथ उसकी मानसिक शक्तियों की भी वृद्धि हुई। अब उसने अपने दयालु पालनकर्ताओं से विदा ली और अकेला यात्रा के लिये निकल पड़ा। कुछ समय तक चल चुकने के बाद वह एक ताड़ के वृक्ष के नीचे सुस्ताने के लिये लेट गया। पेड़ धूप से उसकी रक्षा करने लगा मानों वह भी उसे उस स्त्री के समान ही प्यार करता हो जो उसे वृक्षों के झुरमुट में से उठा लायी थी। यह विश्वास करना तो कठिन है कि ताड़ का पेड़ जिसका तना इतना लम्बा होता है किसी को अपने पत्तों से सारे दिन छाया दे सकता है, पर कहानी से हमें यही पता चलता है कि सारे समय उसकी छाया निश्चल रही और जब तक वह लड़का सोता रहा उसे ठण्डक पहुँचाती रही।

यह सब क्यों और कैसे हुआ?

जन्म से ही बच्चे की इस सुरक्षा का क्या कारण था और ताड़ के पेड़ ने भी धूप से उसका बचाव क्यों किया? क्योंकि उसका जीवन मूल्यवान् था। उस बच्चे को एक दिन **तिरुवल्लुवर** नामक प्रसिद्ध तमिल कवि, "कुरल" की मधुर कविताओं का रचयिता बनना था।

उन वस्तुओं और उन व्यक्तियों की जो संसार के लिये सन्देश लाते हैं रक्षा होनी ही चाहिये। हमको बलिष्ठ बाहु पाकर प्रसन्न होना चाहिये क्योंकि उनकी शक्ति से



हम अशुभ और मृत्यु से उन सबकी रक्षा कर सकते हैं, जो सत्य, शिव और सुन्दर हैं। इन्हीं की रक्षा करने के लिये हमें कभी-कभी लड़ना तथा नाश करना पड़ता है।

तिरुवल्लुवर लोगों को अपने अमृत वचनों का आस्वादन ही नहीं कराते थे बल्कि वे लड़ना और मारना भी जानते थे। उन्होंने कावेरीपक्कम गांव के दैत्य को मारा था। कावेरीपक्कम में एक किसान रहता था। उसके पास एक हजार पशु और अनाज के कई विस्तृत खेत थे। पर इनके आस-पास एक दैत्य का बड़ा डर रहता था। खड़ी फसल को वह जड़ समेत उखाड़ देता; पशुओं और मनुष्यों की हत्या कर डालता। कावेरीपक्कम के निवासियों के हृदय इससे बहुत विक्षुब्ध हो उठे थे। उस धनी किसान ने घोषणा की : "जो वीर हमें इस दैत्य के अत्याचार से मुक्त कर देगा उसे मैं एक मकान, खेत और बहुत-सा धन दूंगा।"

बहुत समय तक कोई वीर आगे नहीं बढ़ा। किसान तब पर्वतवासी मुनियों के पास गया और उनसे उसने राक्षस से छुटकारा पाने का उपाय पूछा। पर्वतवासी मुनि बोले, "तिरुवल्लुवर के पास जाओ।"

इस प्रकार वह किसान इस युवक कवि के पास आया और उनसे सहायता के लिये प्रार्थना की। उन्होंने कुछ राख अपनी हथेली पर ली और उस पर पाँच पवित्र अक्षर लिखे, फिर मन्त्र पढ़ कर वह राख हवा में उड़ा दी। उन अक्षरों और मन्त्रों की शक्ति का उस दैत्य पर कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह मर गया। कावेरीपक्कम के लोग इससे बहुत प्रसन्न हुए।

कुछ वर्ष बाद तिरुवल्लुवर मदुरा शहर गये। बहुत-से लोग उनकी सुन्दर कविता को सुनने के लिये वहाँ एकत्र हुए। वृक्षों के कुञ्ज में पाये गये बच्चे द्वारा रचित इन पदों को सुन कर वे मुग्ध हो गये :

"भला बनने से बढ़ कर और कोई वस्तु इस संसार में मिलनी अत्यन्त कठिन है।"

वहाँ पास ही खिले कमलों वाले एक शान्त तालाब के किनारे चौकी पर विद्वान् कवियों की एक टोली बैठी थी। ये लोग एक नीच जाति वाले कवि को चौकी पर अपने साथ स्थान नहीं देना चाहते थे। प्रश्न-पर-प्रश्न करके वे उन्हें भ्रम में डालने तथा उनकी भूलें पकड़ने की कोशिश कर रहे थे। अन्त में उन्होंने तिरुवल्लुवर से कहा, "ओ पारिया, अपनी कविता की पुस्तक तू इस चौकी पर रख दे। यदि यह सचमुच ही सुन्दर साहित्यिक कृति हुई तो यह चौकी "कुरल" के अतिरिक्त और किसी को अपने ऊपर स्थान नहीं देगी।"

तिरुवल्लुवर ने अपनी पुस्तक पानी के समीप वाली उस चौकी पर रख दी। कहानी में आगे आता है कि पुस्तक का उस पर रखा जाना था कि वह चौकी इतनी छोटी हो गयी कि उस पर केवल उस पुस्तक को ही स्थान मिल सका और मदुरा के वे अभिमानी और ईर्ष्यालु कवि दूसरी ओर तालाब के जल में गिर पड़े। हाँ, वे उन्चास द्वेषी कवि तालाब में कमलों के मध्य में जा पड़े। लज्जित मुख, भीगे शरीर लिये वे बाहर निकले। उस दिन से तमिल भाषा-भाषी "कुरल" से बड़ा प्रेम करने लगे। बच्चों कावेरीपक्कम के राक्षक के मारे जाने से क्या तुम्हें दुःख हुआ? और मदुरा के वे उन्चास बुरे कवि जो पानी में गिर पड़े थे, उनके लिये क्या तुम्हें बुरा लगा?

इस संसार में भली वस्तुएं भी हैं और बुरी भी; हमें भली वस्तुओं से तो प्रेम करना चाहिये, उनकी रक्षा करनी चाहिये और बुरी वस्तुओं से लड़ना तथा उनका नाश करना चाहिये।

इस भले कवि की तरह सभी बुद्धिमान् लोग ऐसा करना जानते हैं और कर भी सकते हैं। वे जितने अधिक बुद्धिमान होंगे उतनी ही अच्छी तरह यह कार्य कर सकेंगे। छोटे बच्चे, जिनकी बुद्धि अभी उतनी विकसित नहीं हुई है और उतना बल भी नहीं रखते, उनका अनुकरण करके अपना साहस बढ़ा सकते हैं।



## तपस्वी श्री जौहर छोटे नारायण शर्मा

सुरेन्द्रनाथ जौहर, जिन्हें सब लोग प्यार से चाचा जी कहते थे, का जीवन एक दीर्घकालीन मातृपूजा रही। इस पूजा वेदी की रचना श्रीअरविन्द द्वारा की हुई थी। उन्होंने ही महामन्त्र भी दिया और इसे धरती से उठाकर आदर्श के उच्चतम शिखर तक ले गये थे। मानव का भावी विकास और भारत की संसिद्धि इसी पूजा से जुड़ी हुयी थी। श्री जौहर का यह सौभाग्य रहा कि जब देश-जागरण के बहुसंख्यक अग्रदूत बाहरी सफलताओं की चर्चा में उलझने लग गये, थककर आराम कुर्सीयाँ ढूँढ़ने लग गये, तो वे अथक निष्ठा के साथ पथ के दूसरे तीसरे चरण में आगे बढ़ने लगे।

पूजा समाप्त कहाँ हुई थी? देश की स्वतंत्रता तो माल प्रथम चरण था। श्री अरविन्द ने स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर दिये गये अपने संदेश में भावी विकास की जो चर्चा की थी, उस पथ पर आगे बढ़ने के लिये जो आधार चाहिये वह तो सिर्फ भगवान् ही दे सकते थे। जीवन में भगवान् की प्रतिष्ठा के बिना आदमी का वह पुरुषार्थ संसिद्ध नहीं हो सकता जिसकी अपेक्षा दिव्य जननी उससे रखती हैं। भारत इस विकास यात्रा का निर्दिष्ट पुरोधा है। वही अगुआ हो सकता है।

परन्तु यह सब तो था आन्तरिक चित्र। बाहर-बाहर में जो लड़ाई लड़ी जा रही थी उसकी दृष्टि तो राजनीतिक जय-पराजय की उलझनों से बाहर नहीं जा सकती थी। विश्व का दूसरा युद्ध जब लड़ा जा रहा था तब हम देखते हैं कि बाहर और भीतर चलने वाले युद्ध दो विपरीत लक्ष्यों को लेकर लड़े जा रहे थे। भारत की राजनीति अंग्रेजों की पराजय चाहती थी। भगवान् उन्हें विजय का आश्वासन दे रहे थे। आदमी की नजर में युद्ध सामरिक

शक्तियों का टकराव था; लेकिन जिन्हें अंतर्दृष्टि प्राप्त थी वे दिव्य चेतना के नवोदय की घड़ी से अंधकार की शक्तियों का प्रबल प्रतिरोध और आक्रमण देख रहे थे। जो ऊपर-ऊपर देखकर ही संतुष्ट थे वे भारतभूमि के बँटवारे के साथ ही शान्तिपाठ गाने लगे। शान्ति की देवी आयी नहीं कि चंडी का रणोन्माद और भी बढ़ गया। जो भारत में हुआ विश्व के रंगमंच पर भी कुछ वैसा ही देखने को मिल रहा था। सन्धिपत्र पर जो हस्ताक्षर डाले गये वे विश्वास से अधिक अविश्वास को रेखांकित करते थे। आज भी दुनिया के नेता शान्ति के लिये जो प्रारूप तैयार करते हैं उन्हें देखकर यह समझना मुश्किल ही होता है कि उनमें ध्वंस की संभावना अधिक होती है कि कल्याण की शुभकामना।

जौहर बालक सुलभ सहजता के साथ उलझन से निकल सच्ची राह पर आ गये थे। यद्यपि राजनीति तब इतनी गंदी नहीं थी, फिर भी उसकी सीमाओं को वे पहचानते थे। दिल्ली राजधानी रहती आयी थी। उसे नया राजतिलक मिला। लेकिन विश्व में अपनी भूमिका के लिये यह तब तक तैयार नहीं हो सकती- जब तक कि इसे भगवान् का पादपीठ नहीं बनाया जाता। भारत माता विश्वमाता है। भारत के गर्भ में भविष्य-विकास का सर्वोत्तम रहस्य पलता है। भारत की राजनीति, भारत का समाज, भारत का जीवन तो ठीक वही नहीं होगा जो आदमी सोचता और बनाता है। भारत भागवद् क्रिया की निर्दिष्ट भूमि है।

श्री जौहर इस दिशा में एक निर्वाचित महापुरुष के रूप में दिखलाई पड़ते हैं। राजनीति की ऊँची कुर्सी नहीं वरन् तपस्वी का आसन, तपस्वी की स्थिर निष्ठा

और सूरमा का संकल्प लेकर वे एक विचित्र तपस्या में लग गये। दिल्ली को राजनैतिक तौर पर सजाया सँवारा गया- भवन बने, कार्यालयों और कारखानों के पुंज से दिल्ली घनी हो उठी। लेकिन भगवान् का आसन! फिर भगवान् नहीं तो बाहरी निर्माण निष्प्रयोजन नहीं तो और क्या है। भारत जो अंधकार की घड़ियों में भी इस तत्व

को सँभालता रहा आज नयी जागृति की बेला में कैसे इसे भूल सकता है। भारतीय चेतना का जाग्रत दीप ले-कर श्री अरविन्द आश्रम- दिल्ली शाखा खड़ी है। जौहर जी ने इसे बनाया सँवारा है। भगवान् की चेतना से दीप्त यह अखण्ड प्रदीप जलता रहेगा और सभी तपस्वी इसकी रक्षा करते रहेंगे।



### चाचा जी की कलम से (मेरा भाग्य)

सारे जीवन मेरे साथ क्या बीती, एक दिलचस्पी कहानी है, परन्तु दर्दनाक। इसको लिखने के लिये हजारों पन्ने चाहिये। परन्तु...

मैंने बनाया एक कन्ट्रीहोम दिल्ली शहर से बहुत दूर एक गाँव के पास। बनाते समय राजा-महाराजाओं के महलों का ख्वाब देखता था। कभी एक दीवार बनाता तो दूसरे दिन गिरा देता। फिर हटाकर बनाता फिर गिरा देता। कोई नक्शा नहीं। कोई आर्किटेक्ट नहीं, कोई इंजीनियर नहीं, कोई सलाहकार नहीं।

पहले तो मुगल शैली में एक बहुत बड़ा दरबार-हॉल बनाया। उसमें गोल और चौरस खम्भे (Pillars) लगाये। दरबार-हॉल के एक पहलू में दीवान लगाया, कालीन बिछाये। चारों तरफ परदे लगाये।

इस दरबार हॉल के अन्दर से ही तहखाने में जाने का रास्ता। फिर दरबार-हॉल के अन्दर से ही ऊपर जाने का रास्ता। तरह-तरह के कमरे, बरामदे, बुखारचे। ऊपर की मंज़िलों में ऊँचे-नीचे, अन्दर-बाहर हर अलग-अलग मौसम में काम आने वाले कमरे, मेहमानों के लिये अलग व्यवस्था और बाहर से ज़ीना। रंग-बिरंगे तरह-तरह की डिज़ाइन के फर्श।

तात्पर्य यह है कि कई साल मेहनत और तपस्या के बाद जब यह सब बन चुका तो भगवान् को पसन्द आ गया और खुद आकर बैठ गये और कब्ज़ा कर लिया। मेरे जीवन के स्वप्न और ज़िन्दगी की उम्मीदें धरी रह गयीं। भगवान् ने मुझसे कहा कि, "तुम बाहर खड़े रहकर घण्टी बजाओ और गेट-कीपरी करो।" और तब से वही कर रहा हूँ।

अब बतलाइये यह भी कोई बात हुई? यह कोई इन्साफ़ है अगर मुझसे घण्टी ही बजवानी थी और गेट-कीपरी करवानी थी तो महल बनाने का बोझ मुझ पर क्यों लादा? वे खुद बना लेते और बाद में मुझे चौकीदार रख लेते।

यह है मेरा भाग्य। परन्तु क्या इससे भी कोई और बड़ा भाग्य हो सकता है?



## पथ पर (बुढ़ापा)

### ज्ञानवती गुप्ता

**स्वामी** सुखानन्द के एक गृहस्थ भक्त थे श्रीचरण। बड़ा अच्छा भरा-पूरा परिवार था। शहर में सभी चर्चा करते थे - "भई, श्रीचरण बड़ा भाग्यशाली है। आज के युग में संयुक्त परिवार, योग्य संतान और लक्ष्मी व सरस्वती दोनों की कृपा हो, यह दुर्लभ ही है।" एक दिन उनकी वृद्धा माँ ने आनन्द को बुलावा भेजा।

माँ - "बेटा आनन्द, गुरुदेव की तो कुछ खबर नहीं मिली ना?"

आनन्द- "नहीं माँ जी।"

माँ - "अद्भुत पहुँचे हुये महात्मा थे वे। मैंने इतने महात्माओं के दर्शन किये हैं। पहले तो हर साल तीर्थ-दर्शन को चली जाया करती थी, पर उन जैसा संत कोई ना मिला। उनके पास थोड़ी ही देर बैठने से ऐसा प्रकाश, शांति और आनन्द महसूस होता था कि दुनिया की दूसरी बातें भूल ही जाती थीं, मानों किसी दूसरे लोक में पहुँच गये। बेटा, तुमसे एक बात पूछने के लिये बुलाया है।"

आनन्द ने माँ के चेहरे को प्रश्नात्मक आँखों से देखा।

"यह शरीर अब ठीक नहीं रहता। बुढ़ापा है, कुछ ना कुछ लगा ही रहता है, इंद्रियाँ भी साथ नहीं देतीं। मैं चाहती हूँ कि भगवद् भजन करती हुई शान्ति से अपनी यह जीवन-यात्रा पूरी कर लूँ।"

"तो इसमें बाधा क्या है माँ जी?"

"बाधा एक ही है आनन्द बेटा, बीमारी और कमजोरी के कारण मन भी बहुत कमजोर हो गया है। घर-गृहस्थी में रही तो छोटा या बड़ा, कोई ना कोई छोटी-मोटी बात चलते-चलाते जाने-अनजाने में कह ही जाता है। मैं यह नहीं कहती कि इसमें उनका दोष है, उन बेचारों को हर समय अपने-अपने इतने काम होते हैं। किसके पास

समय है कि थोड़ी देर टिक कर, बैठ कर शान्ति से बात करे। पर मेरे मन में उन वचनों से, उस व्यवहार से पीड़ा होती है। मन दुःखी हो जाता है और फिर भगवान् के भजन में भी नहीं लगता। अपने मन को बहुत समझाती हूँ, पर यह उपेक्षा सही नहीं जाती। अब इस उम्र में ऐसे स्वास्थ्य के साथ किसी आश्रम में जाकर भी नहीं रह सकती। करूँ तो क्या करूँ? मैं बस एक ही चीज चाहती हूँ कि मेरे ये शेष दिन शान्ति से कट जायें।"

आनन्द बहुत शान्त और गम्भीर स्वर में बोले, "माँ जी, घर में शान्ति नहीं है और किसी आश्रम में जाकर शान्ति मिल जायेगी, आपकी यह धारणा ठीक नहीं है। आप इस घर की स्वामिनी रही हैं, इन सब बच्चों की आप माँ हैं। आप आज भी गौरव से जियेंगी, दीन और दुर्बल बनकर नहीं।"

"साधारण संसारी लोग कहते हैं कि शारीरिक दुर्बलता मन को भी दुर्बल बना देती है। व्यक्ति बहुत संवेदनशील हो जाता है। पर आपने तो गुरुदेव से प्रकाश पाया है, भगवान् में आपकी आस्था है, इसलिये आपको यह बात आसानी से समझ में आ जानी चाहिये। क्योंकि आप ऐसी शान्ति पाना चाहती हैं जो किसी भी बात या घटना से विचलित ना हो तो इसके लिये बार-बार जीवन में ऐसी घटनाएं घटेंगी ही जो शान्ति को भंग करेंगी।"

माँ- "ऐसा क्यों आनन्द?"

आनन्द- "ऐसा ही होता है माँ जी। हम जीवन में जो भी वस्तु पाना चाहते हैं उसके लिये कुछ मूल्य देना पड़ता है ना! वास्तव में इन विरोधी तत्वों का आना - ये हमारे भीतर से भी आ सकते हैं और बाहर से भी - उस महत्तर वस्तु का मूल्य है। अगर मैं स्वयं शान्त रहूँ, किसी को



कुछ बुरा या उद्वेगजनक ना कहूँ और चाहूँ कि सब मेरे साथ ऐसा ही व्यवहार करें, ऐसा होता नहीं। इस अपेक्षा से हमारी तकलीफ और बढ़ जाती है। भगवान् चाहते हैं कि उन स्तरों पर शान्ति स्थापित हो जो हमारे दुर्बल स्थल रहे हैं। असल में स्थायी शान्ति तभी होगी ना! नहीं तो जब-जब भी हम चेतना के उन स्तरों पर होंगे जो दुर्बल हैं तभी शान्ति भंग हो जायेगी। दुर्बलता की दुहाई देकर हम दूसरों से रियायत की भीख माँगें तो हमारी साधना तो अधूरी ही रही ना!"

"आपका शरीर भले कमजोर है लेकिन आपका मन खूब सबल है। अब भी अगर आप संकल्प करेंगी तो इसे जरूर जीत लेंगी। हमारे साथ प्रभु हैं जो सर्वप्रथम हैं। हम अहंकार के आश्रित ना रहकर भगवान् की गोद में रहें, प्रभु अपने आप सबका जवाब दे लेंगे। यह अहंकारिक चेतना ही सारी अशान्ति की जड़ है, कोई व्यक्ति या घटना नहीं।"

माँ- "सचमुच ही तूने बहुत ठीक कही। इस बात को मैं सदा याद रख सकूँ।" उनके चेहरे पर आंतरिक संकल्प की दृढ़ता थी।

आनन्द- "एक और इससे भी सुंदर तरीका है माँ जी, उससे आपकी आत्मशक्ति और मन की शक्ति और अधिक बढ़ेगी।"

माँ - "वह क्या है बेटा?"

आनन्द- "जब भी आप किसी व्यक्ति द्वारा आहत महसूस करें तभी श्री माँ की शरण में जाकर उन्हें निवेदित करें- "माँ! इस चोट को तू सँभाल।" और माँ सँभाल लेती हैं। उन पर सब कुछ छोड़ देने से स्वयंमेव सब शान्त हो जाता है। एक और सुंदर उपाय गुरुदेव बताया करते थे- उस व्यक्ति के लिये भगवान् से प्रार्थना करो, "प्रभो! इसका हृदय प्रेम और प्रकाश से भर दो।" जब व्यक्ति का हृदय प्रेम और प्रकाश से भर जायेगा तो उसके भीतर क्षोभकारी स्पन्दन उठेंगे ही नहीं। फिर वह किसी को कष्ट

पहुँचाने का कारण ना बनेगा। उसका आत्मा में नव-जन्म हो जायेगा। माँ जी, वास्तव में यह बहुत सुन्दर और भव्य कार्य है यदि हम इसे कर सकें।"

"यह काफी कठिन है बेटा।" गंभीरता से सोचते हुये माँ जी ने कहा।

आनन्द- "अभ्यास से कठिन काम भी आसान हो जाते हैं माँजी, और आत्मनिर्माण का काम तो है ही कठिन काम। फिर भी अगर हमारा मन अच्छी तरह समझ कर तैयार हो जाये कि यह काम हमें करना है तो मन में इतनी काफी शक्ति है कि वह प्राण और शरीर पर पर्याप्त दबाव डाल सकता है, उन्हें ऊँचे जीवन क्रम के लिये तैयार कर सकता है। और यदि भगवान् में आस्था हो तो कठिन से कठिन कार्य भी भगवान् से पहुँच के भीतर होते हैं।"

"हमारा यह संस्कार है कि बुढ़ापा रिटायरी का जीवन है। किसी संघर्ष या तनाव का सामना ना करना पड़े ऐसा हमारा मनोभाव हो जाता है। हम कुछ काम कर सकते हैं, उन्नति कर सकते हैं, और भी सुन्दर ढंग से जी सकते हैं, यह सोच ही नहीं पाते। हम अपने को शरीर, इंद्रियों और प्राण का दास बना लेते हैं। फलतः दूसरों से सहानुभूति व दया की अपेक्षा करने लगते हैं। हम भूल जाते हैं कि स्वामी तो भीतर बैठा है, वह ना कभी बूढ़ा होता है ना अशक्त!"

माँ- "बेटा, आज तूने गुरुदेव की ही तरह मेरी आँखें खोल दीं। मैं तो सारा दोष गृहस्थी और घर के लोगों का समझती थी। तेरे कहने से दो बातें साफ समझ में आयीं कि साधना हमें करनी है तो हमें अपने से ऊपर उठना होगा। दूसरों की दया पर निर्भर ना रहें, उनसे सहायता की अपेक्षा ना करें बल्कि दूसरे ढंग से हम उनकी सहायता कर सकते हैं- उनके प्रति प्रेम और सद्भाव रखकर। और सर्वोपरि बात है उन सर्वशक्तिमान, प्रेमस्वरूप भगवान् की शरण में जाना, जो अब इस एकांत में रहकर अधिक आसानी से हो सकता है।"

कुछ क्षण माँ जी ने भगवान् की फोटो के सामने हाथ जोड़े, आँखें मूँदे कृतज्ञता के भाव में बैठी रहीं।

"बेटा आनन्द, तूने बुढ़ापे का ऐसा सुन्दर उपयोग बता दिया। अब जीवन भार क्यों लगेगा। यह असहायता, दीनता, भयमिश्रित विकलता का जीवन

नहीं, बल्कि उत्साह के साथ अपने अंदर का काम करने और अधिकाधिक भगवद्भिर्भर होने का समय है। आह! यह तो पके आम जैसा रसीला, मधुर और सुगंध भरा जीवन होगा।"

आनन्द- "और गौरवपूर्ण भी!"



### अहंकार

अपने अहंकार को निकाल फेंको, उसे व्यर्थ कपड़ों की तरह गिर जाने दो।

जो प्रयास करने पड़ेंगे उनके परिणाम सार्थक होंगे और फिर, तुम रास्ते में एकदम से अकेले नहीं हो। अगर तुम्हारे अन्दर विश्वास है तो तुम्हें सहायता मिलती है।

अगर तुम्हारा भागवत् कृपा के साथ क्षण-भर के लिये भी संपर्क हो जाये - उस अद्भुत भागवत् कृपा के साथ जो तुम्हें साथ ले जाती है, तुम्हें रास्ते पर तेज चलाती है, यहाँ तक कि तुम्हें यह भी भुला देती है कि तुम्हें तेजी करनी है - अगर तुम्हारा उसके साथ क्षण भरके लिये भी संपर्क हो जाये, तब तुम कभी ना भूलने के लिये प्रयास कर सकते हो। और बालक की सहजता, बालक की सरलता- के साथ जिसके लिये किसी तरह की कोई समस्या नहीं होती, तुम स्वयं को भागवत् कृपा के सुपुर्द कर दो और उसे सब कुछ करने दो।

जो आवश्यक है वह है। उस पर कान ना दो जो प्रतिरोध करे। उस पर विश्वास ना करो जो प्रतिवाद करे। पूरा विश्वास, सच्चा विश्वास रखो, ऐसा विश्वास जो बिना हिसाब-किताब के, बिना सौदेबाजी के, तुम्हें अपने-आपको दे देने दे। विश्वास.. वह विश्वास जो कहे, "यह कर दो, मेरे लिये यह कर दो,.. मैं तुम्हारे ऊपर छोड़ रहा हूँ।"

यह सबसे अच्छा तरीका है।

-माताजी

# नाद ब्रह्म में लीन संगीतकार

पं. विजयशंकर मिश्र

**26** जनवरी की शाम संगीत साधिका, नाद ब्रह्म की उपासिका करुणामयी अबरोल का निधन संगीत जगत के लिए एक बड़ी क्षति है। करुणाजी संगीत के व्यावसायिक मंचों से दूर रहकर स्वांतःसुखाय संगीत की साधना, आराधना करती थीं और संगीत को जो लोग अध्यात्म के रूप में लेते हैं, उन्हें शिक्षा भी देती थीं। संगीत सिखाने के लिये वे भारत से बाहर भी जाती थीं।

करुणाजी ने संगीत की शिक्षा पहले पं० विनय चन्द्र मौद्गल्य से प्राप्त की थी जिन्हें वे अपना प्रथम गुरु कहा करती थीं। बाद में संगीत की शिक्षा उन्होंने पं० प्राणनाथ जी से प्राप्त की थी- जिन्हें संगीतज्ञों का संगीतज्ञ कहा जाता था। करुणा जी कैराना घराने की संगीत विभूति थीं। दिल्ली स्थित गांधर्व महाविद्यालय से भी वे काफी गहराई और आत्मीयता से जुड़ी थीं। आकाशवाणी से भी उनके कार्यक्रम प्रसारित होते रहते थे और हर धर्म के पवित्र-स्थलों पर भी उनके स्वर गूंजा करते थे, किंतु व्यावसायिक मंचों की सीढ़ियों पर उन्होंने कभी पांव नहीं रखा। आजादी के पूर्व विभिन्न सभाओं में जाकर वे राष्ट्र गीत, वंदे मातरम् का ओजपूर्ण गायन अपनी बड़ी बहन के साथ जरूर किया करती थीं। प्रेम, दया और करुणा की प्रतिमूर्ति 'करुणा दीदी' अपनी युवावस्था में ही श्रीमाँ से जुड़ गई थीं। बाद में वे दिल्ली स्थित श्री अरविन्दो आश्रम आ गईं। 1967 में श्री माँ के आशीर्वचनों के

साथ आरंभ हुए मातृ कला मंदिर से वे 1967 में जुड़ीं तो वह जुड़ाव 50 वर्षों बाद 2017 तक यथावत रहा। प्रेम का यह बंधन उनके निधन के बाद ही टूटा।

आज संगीतज्ञों में जहाँ प्राप्त करने की भावना बलवती होती जा रही है... वे सब कुछ पाना चाहते हैं, वहीं करुणा दीदी त्याग की प्रतिमूर्ति थीं। कुछ वर्ष पहले एक संस्था ने दस महिला-संगीतकारों को सम्मानित करने का निर्णय लिया था। यह खबर ऑफिस से बाहर जाते ही लोगों के फोन का तांता लग गया। हमारी लिस्ट में पहला नाम करुणा दीदी का था किंतु वे तो किसी और ही मिट्टी की बनी हुई थीं। उन्होंने अत्यंत विनम्रता और दृढ़तापूर्वक संगीत विभूति सम्मान लेने से इन्कार कर दिया था।

करुणा दीदी विगत कुछ दिनों से अस्वस्थ थीं। लेकिन स्थिति इतनी बुरी नहीं थी कि उनके विदा हो जाने की कल्पना भी की जा सके। दो दिन पहले तक उन्होंने अपने शिष्यों को सिखाया था। उस दिन भी लोगों से बातचीत करती रहीं। शाम के चार बजे के करीब उन्होंने अपना प्रिय भजन 'ओम् नमो भगवते वासुदेवाय' सुनने की जब इच्छा प्रकट की तो रंगम्मा जी ने गाना शुरू कर दिया। थोड़ी देर बाद उन्होंने रंगम्मा जी के कंधे पर प्रेमभरा हाथ रखकर कहा- 'हिम्मत रखना'। इसके बाद वे लेटीं और तत्काल नाद ब्रह्म में लीन हो गईं।



## कवितायें

### मिठू पाल

#### श्री करुणामयी स्मृति

तव करुणा श्रुति स्रोत  
आश्रित तुम्हारे गान में  
प्रेम रस, रस प्रेम सरोवर  
श्रद्धा नमन बहे स्वर-स्वर में  
स्वर्ग में हो रहा है धरा का संगीत ।  
धात्री ने भेजा स्वर्णिम धरोहर  
भर-भर अर्पण गीत  
स्वर्ग में हो रहा है धरा का संगीत ।  
मधुरता अंकित सुर चला है  
छन्द ताल के आलोकन  
करुणामय एक वाणी से मुखरित  
मुखरित देव गण विनीत  
स्वर्ग में हो रहा है धरा का संगीत ।  
सुगम गान जब छलक छलकता  
स्वर गंगा में उठे हिलोर  
सर्व देव जन होत विभोर  
कुसुम कली का सुन तव गीत  
स्वर्ग में हो रहा है धरा का संगीत ।

### सुमिलानन्दन पंत

#### मुझे प्रणति दो

मुझे प्रणति दो !  
प्रति समर्पित प्राण कर सकूं,  
निज पद रति दो !  
विनय मुक्त, जन में मिल जाऊं,  
श्रद्धानत, ऊपर उठ पाऊं,  
ध्यान मौन, मर्मस्पृह गाऊं,  
अंतर्गति दो !  
मैं मर्त्य वेणु का भग्न बाँस,  
तुम दिव्य सांस ;  
मैं छिद्रभरा, निःस्वर निराश,  
तुम गीति लास ;  
मैं शुष्क, सरस कर दो विकास,  
मैं रिक्त, पूर्ण कर भर दो  
नव आशाअभिलाष;  
स्वर-संगति दो !  
जब मूँदे कुमुद अंतर्लोचन,  
जब जगे पद्म-वन स्वप्न-नयन,  
तब गीतमुक्त मधुकर सा मन  
गा गा जीवन-मधु करे चयन,  
चिर परिणति दो !  
मुझे प्रणति दो !





# महिला आन्दोलन

## सरोजिनी नायडू

सरोजिनी नायडू भारत की उन महान महिलाओं में से एक हैं। जिन्होंने अपने महिला होने पर सदा गर्व किया है। उनका विश्वास था कि किसी भी देश की उन्नति तभी हो सकती है जब उस देश की महिलायें पढ़ी-लिखी हों। जीवन में पुरुषों के समान महत्वपूर्ण स्थान की अधिकारी हों। उन्हें पूरा सम्मान और समानता मिले। सरोजिनी प्रारंभ से ही सुधारवादी थीं। वह महिलाओं की समस्याओं में रूचि लेने लगी थीं।

सन् 1902 में जब सरोजिनी केवल 23 वर्ष की थीं, उन्होंने बंबई की एक विराट जनसभा और अनेक महिला-सभाओं में भाषण दिये। इन भाषणों में उन्होंने बहुत से विषयों को उठाया जिनमें महिलाओं की कमजोर सामाजिक स्थिति, बाल-विवाह, विधवा-विवाह, पुरुषों की एक से अधिक शादी और नई शिक्षा महत्वपूर्ण थे। उन्होंने बड़े भावुकतापूर्ण ढंग से महिलाओं से कहा कि वे घर से बाहर आयें। काम में जुट जायें। व्यवसाय आदि में भी भाग लें। परंपरा की जंजीरों को तोड़ डालें। अपने चारों ओर फैली हुई गरीबी को देखें। अस्पतालों में पड़े रोगियों की सेवा करें। बच्चों की शिक्षा की तरफ ध्यान दें। अनाथों और विकलांगों की सहायता करें। सरोजिनी का भाषण बहुत चोट करने वाला था। साथ ही मानवता और स्नेह से भरा हुआ था।

सरोजिनी में अपनी बात कहने की वह अपार शक्ति थी कि सुनने वाला उनकी बात को बहुत ध्यान से सुनता। उस पर विचार करता।

देश में नारी स्वतंत्रता के आंदोलन को आगे बढ़ाने में उनकी भाषण कला ने बहुत सहयोग दिया। सरोजिनी से पहले भी पंडित रमाबाई, डॉ० श्रीमती मुत्तुलक्ष्मी रेड्डी,

रमाबाई रानाडे आदि अपने-अपने क्षेत्रों में नारी की दशा को सुधारने के लिये काम कर रही थीं।

सरोजिनी की विशेषता यह थी कि वे अपने श्रोताओं के हृदय को स्पर्श करने की क्षमता रखती थीं। सुनने वाले उनकी बात सुनकर प्रभाव ग्रहण करते और मंत्रमुग्ध हो जाते। दूसरों को काम करने के लिये प्रेरणा देने की शक्ति उनमें थी। उन्होंने महिलाओं से संबंधित सामाजिक बुराइयों का बहुत स्पष्टता और विस्तार से वर्णन किया और विरोध भी। उनके इस कार्य ने एक ऐसे नेतृत्व को जन्म दिया जिससे महिला स्वतंत्रता आंदोलन आगे बढ़ा और उसने अखिल भारतीय स्वरूप धारण कर लिया।

महिला शिक्षा के संबंध में उन्होंने कहा, "संसार में भारत एक ऐसा देश है जो प्रथम शताब्दी के आरंभ में एक महान् सभ्यता के रूप में विकसित था जिसने संसार की प्रगति में महान योगदान दिया है। यहाँ विदुषी और प्रतिभा संपन्न महिलाओं के उदाहरण मिलते हैं। आज महिलाओं की स्थिति खराब हो गई है। अब समय आ गया है कि इस दिशा में हम कोई ठोस कदम उठाएँ। फलदायक परिणाम प्राप्त करें।"

सरोजिनी ऐसा अनुभव करती थीं कि राष्ट्रीय आदर्श को पाने के लिये आंदोलन, 'महिला प्रश्न' के चारों ओर केंद्रित किया जाये। उन्हें इस बात पर खेद था कि महिला शिक्षा की अनिवार्यता को सर्वसम्मति से स्वीकृति तक नहीं मिली।

वे इस बात से बहुत दुखी थीं कि क्या किसी व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह दूसरे को स्वच्छ वायु के सेवन के अधिकार से वंचित कर दे। भारतीय नारी के मामले में पुरुषों ने यही किया है। यही कारण है कि आज

भारतीय पुरुष की भी दुर्दशा हो गई है। उन्होंने पुरुषों को यह जिम्मेदारी सौंपी कि वे महिलाओं को उनके पुराने अधिकार लौटा दें। राष्ट्र की सच्ची निर्माता महिलायें हैं, पुरुष नहीं। महिलाओं के सक्रिय सहयोग के बिना प्रगति के समस्त प्रयास एकदम बेकार रहेंगे।

उन्होंने हमेशा महिला शिक्षा पर बहुत बल दिया। महिला शिक्षा के संबंध में उनका विचार था कि संकीर्ण मस्तिष्क वाले लोग कहते हैं कि शिक्षा महिलाओं को साहसिक बना देती है। अतः यह निंदनीय है। भारत को इस बात का गर्व है कि महिलायें पुरुषों की अपेक्षा अधिक साहसी और वीर रही हैं। किसी भी देश के उत्थान के लिये स्त्री-पुरुष के बीच सहयोग आवश्यक है। एक पहिले की गाड़ी ठीक से नहीं चल पाती। पर्दा प्रथा का यह मतलब नहीं कि मस्तिष्क और आत्मा पर भी पर्दा डाल दिया जाये। रूढ़ियों को समाप्त कर देना चाहिये। भारत की आत्मा तभी मुक्त होगी जब नारी मुक्त होगी।

उन्होंने बार-बार महिलाओं के सुधार के लिये आवाज उठाई, अनेक प्रयत्न किये। वह जानती थीं कि भारत में महिलाओं की गौरवशाली परंपरा रही है। सीता अपने सतीत्व को दी गई चुनौती को सहन ना कर सकीं। उन्होंने धरती माता से विनती की कि वह उन्हें अपने भीतर समा लें। सरोजिनी ने इस उदाहरण को भी पेश किया।

मार्च 1918 में जालंधर में महिलाओं की स्वतंत्रता के विषय पर उन्होंने बहुत जोरदार भाषण दिया। भारत की भावी महिलाओं की कल्पना विषय पर भी उन्होंने अपने विचार प्रकट किये। अप्रैल 1918 में लाहौर में महिलाओं की राष्ट्रीय शिक्षा के बारे में भी भाषण दिये। वे

जानती थीं कि पुरुष प्राचीन नारी आदर्श को महत्व देते हैं। सावित्री अपने पति के प्राणों को वापस प्राप्त करने के लिये यमराज के पास गई, यह बात पुरुष मानते हैं फिर आधुनिक सावित्री को उस शक्ति से वंचित रखते हैं जिसके द्वारा वह राष्ट्रीय जीवन को मृत्यु के गर्त से उबार सकती है।

उन्होंने नारी के लिये विशेष अधिकारों की मांग नहीं की। यह मांग उन्हें हीन ठहरा सकती थी। भारत में ऐसा कभी हुआ भी नहीं। नारी हमेशा राजनीतिक परिषदों और युद्ध क्षेत्र में पुरुष के साथ कंधा मिलाकर चली है। उनके अनुसार महान् राष्ट्रीय संकटों में पुरुष ही बाहर जाता है। नारी की आशावादिता और प्रार्थना से ही पुरुष को शक्ति मिलती है। नारी की प्रेरणा से ही वह एक सफल योद्धा बनता है।

सरोजिनी नायडू का अप्रैल 1944 में भारत के सौ महिला संगठनों की ओर से अभिनंदन किया गया। उन्होंने बंगाल में अकाल से बचाए गये बच्चों के लिये बनाये गये ' बाल सुरक्षा कोष ' की बैठक की अध्यक्षता की। यही संगठन आगे चलकर ' भारतीय बाल कल्याण परिषद बना ।

सरोजिनी नायडू जीवन भर स्त्रियों की आजादी के लिये कोशिश करती रहीं। उन्होंने स्त्रियों की दशा सुधारने के लिये बहुत कोशिश की। वह स्वयं उनकी प्रेरणा स्रोत बनीं। उनको उदार दृष्टि दी। खुले प्रांगण में रहने की सीख दी उनमें सेवा, त्याग और ममता के भाव जगाये। यही कारण है कि सरोजिनी नायडू का जन्म दिवस तेरह फरवरी देश में 'नारी दिवस' के रूप में मनाया जाता है।



# श्री माँ के ध्वजारोहक

## श्री सुधीर सरकार (त्रियुगी नारायण)

**युग**-युग में मानव शरीर धारण कर, जन्म जन्म में तेरा ही कार्य कर, हम तेरे आनन्दधाम को लौट जाते हैं। इस बार भी जन्म लेकर हम तेरे ही कार्य के व्रती हैं।

### श्री अरविन्द

श्री अरविन्द के नेतृत्व में इस शताब्दी के क्रान्तिकारियों में सबसे महान योद्धा, क्रियाशील एवं साहसी क्रान्तिकारी सुधीर सरकार का जन्म फरीदपुर (अब बंगलादेश) में 21 फरवरी 1889 को हुआ। वे एक जाने माने चिकित्सक डॉ० प्रसन्नकुमार सरकार के पुत्र थे जो खुलना में श्री अरविन्द के पिता डॉ० कृष्णधन घोष के घनिष्ठ सहयोगी थे। बचपन में ही सुधीर का शरीर हृष्ट-पुष्ट और बलवान था। यह उनके लिये भगवान की देन थी। देशप्रेम, आत्मगौरव की भावना तो उनके खून में ही थी और अपने देशवासियों का अपमान उनके लिये सर्वथा असह्य था। यूरोपियों की भेदभावपूर्ण नीति को वे सहन नहीं कर सकते थे। वे बाल्यकाल से ही बड़े निडर और साहसी थे।

अपने अध्ययन काल में जब सुधीर स्कूल में पढ़ रहे थे उन्होंने दिनों स्कूल के एक ब्रिटिश इंस्पेक्टर के लड़के ने जो इनका सहपाठी था सुधीर का अपमान किया। फिर क्या था! सुधीर ने जम कर उसकी मरम्मत कर दी। मामला कोर्ट में गया लेकिन जज ने इन्हें कम आयु का समझ कर छोड़ दिया। स्कूल की नीरस, उबाऊ और भारयुक्त पढ़ाई में सुधीर अपने को ढाल नहीं पाये। उसके प्रति उनके मन में विद्रोह उत्पन्न हुआ और एक दिन अपने एक मित्र की सहायता से उन्होंने स्कूल में आग लगा दी। संयोग से अधिक नुकसान नहीं हुआ।

विद्यालय के अधिकारियों ने इन्हें स्कूल से निकालने की धमकी दी लेकिन बाद में नरम पड़ गये।

सुधीर स्वयं स्कूल से अनुपस्थित रहने लगे और देहात में उन्होंने गरीब लोगों की सेवा करना आरम्भ किया। इस तरह अपने सामाजिक कार्य द्वारा वे अपने देश के अशिक्षित व गिरे हुये लोगों के संपर्क में आये जो कालान्तर में उनके जीवन का एक हिस्सा ही बन गया।

उनके जीवन में सबसे बड़ा मोड़ तब आया जब सन् 1905 में अंग्रेज शासकों द्वारा बंगाल का विभाजन किया गया। यह एक बहुत बड़ा आघात था, भारत माता के अंग को काटकर उसे अपंग और असक्त बनाना था। इस कार्य ने ब्रिटिश राज को चुनौती दी और संघर्ष प्रारंभ हुआ। उस समय श्री अरविन्द ने इस मरते हुये राष्ट्र में जीवन-शक्ति का संचार किया, उन्होंने उगते हुये नये राष्ट्र की कमान संभाली और भारत के पूर्ण स्वाधीनता की आवाज बुलंद की। उनके भाषण और आग्नेय लेख भारत के युवाओं के प्रेरणास्रोत बने और लोग देश की बलिबेदी पर मरने-मिटने के लिये सन्नद्ध हो गये।

सुधीर सरकार उन युवाओं में अग्रणी थे। उन्होंने भारतमाता की पुकार सुनी और उसके साथ अपने एकात्म का अनुभव किया। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि उनके अस्तित्व का एकमात्र हेतु मातृभूमि की सेवा है। बस उसकी रक्षा के लिये उन्होंने अपना समग्र जीवन भारत माता के चरणों में समर्पित कर दिया।

अपने स्कूल को नमस्ते कर सुधीर सीधे कलकत्ता पहुँचे और वहाँ क्रान्तिकारी समाचार पत्र 'युगान्तर' के स्टाफ में शामिल हो गये। वहीं पर उन्होंने श्री अरविन्द के अनुज बारीन्द्र कुमार घोष से भेंट की। अन्त में बारीन्द्र

द्वारा वे मानिकतल्ला में क्रांतिकारी कार्यों के प्रशिक्षण और युद्ध की तैयारी के लिये चुने गये। अपनी छाती से उन्होंने खून निकाला, और अपने लाल खून से माँ काली के समक्ष अपने जीवन की कीमत पर क्रान्तिकारी दल के सभी नियम और विधानों के पालन की शपथ लिखी।

अब सुधीर के लिये अपने मातृ भूमि की सेवा, उसकी आराधना और उसके लिये मर-मिटने से बड़ा कोई काम ना था। श्री अरविन्द के आवाहन का यह सीधा प्रत्युत्तर था। उन्होंने इस आन्तरिक पुकार का अनुसरण किया और पूर्णतया क्रांतिकारी कार्यों में डूब गये। उन्होंने अपने जीवन की सारी सुख-सुविधायें त्याग दीं। उनके उत्साह, साहस, शक्ति और बलिदान की भावना का कोई अन्त नहीं था। देश की स्वाधीनता के आदर्शों से प्रभावित होकर वे क्रांतिकारियों की अग्रिम पंक्ति में जा खड़े हुये। यद्यपि अभी उनकी उमर ठीक अठारह वर्ष की थी लेकिन इसी उमर में वे बारीन्द्र कुमार घोष, उलस्कर दत्त, हेम चन्द्र दास, प्रफुल्ल चाकी, खुदीराम बोस, कनाईलाल दत्त और सत्येन्द्र नाथ बोस जैसे क्रांतिकारियों के विश्वासभाजन और साथी बने।

एक बार सुधीर अपने छः क्रांतिकारियों के साथ जमालपुर गये। वहाँ के असामाजिक तत्व जातीय एकता को भंग करने के लिये तुले हुये थे। क्रांतिकारियों ने वहाँ पर दंगाइयों की एक बहुत बड़ी भीड़ से मुकाबला किया। अन्त में पुलिस के आ जाने से अन्य सभी क्रांतिकारी गिरफ्तार हो गये लेकिन सुधीर अपने शौर्य और कौशल से बच निकले। कलकत्ता पहुँचने पर अपनी बहादुरी और साहस के कारण वे एक हीरो की तरह विख्यात हो गये और इन्हीं गुणों के कारण उन्हें श्री अरविन्द का व्यक्तिगत सेवक व अंगरक्षक बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस तरह कलकत्ता में एक साल तक सुधीर श्री अरविन्द के साथ एक पारिवारिक सदस्य की भाँति रहे। उनके कार्यों में उनका प्रमुख काम था क्रांतिकारी कार्यों

के लिये फण्ड एकत्र करने हेतु श्री अरविन्द के पत्रों को विभिन्न लोगों तक पहुँचाना। दिसम्बर 1907 में जब श्री अरविन्द सूरत कांग्रेस के अधिवेशन में शामिल होने गये तब सुधीर भी उनके साथ उनके अंगरक्षक के रूप में रहे और सूरत कांग्रेस के भंग होने के बाद बम्बई, बड़ौदा, पूना, अमरावती आदि के लेक्चर टूर में भी उन्होंने श्री अरविन्द का बराबर साथ दिया।

30 अप्रैल 1908 को क्रांतिकारियों द्वारा मुजफ्फरपुर के एक क्रूर अंग्रेज मजिस्ट्रेट किंग्स फोर्ड की हत्या का प्रयास किया गया, जिससे ब्रिटिश सरकार बौखला उठी और उसका दमन चक्र चालू हुआ। सरकार ने क्रांतिकारियों को पूर्ण रूप से कुचल देने का निश्चय किया। 20 मई को सुधीर खुलना में गिरफ्तार हुये, श्री अरविन्द सहित अनेक लोग पकड़े गये। अन्त में अड़तीस लोगों के विरुद्ध अभियोग चला और अलीपुर बम केस में वे सभी एक साल तक विचाराधीन कैदी के रूप में रहे। इन वीर नवयुवकों को देखकर जेल के तमाम अधिकारी चकित और दंग थे, उन्हें ना तो दण्ड का भय था और ना मृत्यु का। इस जेल जीवन के अधिकांश समय श्री अरविन्द ध्यान में डूबे रहे। ऐसे समय में सुधीर ने उनकी सुख सुविधाओं का बराबर ध्यान रखा और यथासम्भव उनकी परिचर्या में लगे रहे लेकिन चार महीने बाद दो क्रांतिकारियों ने जेल के भीतर ही पुलिस गवाह नरेन गोस्वामी की हत्या कर दी जिसके परिणाम स्वरूप सभी क्रांतिकारी पुनः अलग-अलग काल-कोठरियों में बन्द कर दिये गये।

अब वे केवल कोर्ट में ही मिल सकते थे और एक दूसरे के साथ बातें कर सकते थे। एक बार की बात है- सभी क्रांतिकारियों से कोर्ट में बयान लिये जा रहे थे। लेकिन श्री अरविन्द वहाँ भी बिल्कुल शान्त और ध्यान मग्न थे जैसे कुछ हो ही ना रहा हो। ऐसी स्थिति में एक सन्तरी ने श्री अरविन्द के शरीर को हिलाने का प्रयास

किया। जिसे देखते ही सुधीर आग-बबूला हो गये। वे तुरन्त एक शेर की तरह अपनी गैलरी से कूदे और हथकड़ियों से जड़े दोनों हाथों को उस सन्तरी के सिर पर तान दिया। इस पर कुहराम मच गया, क्रान्तिकारियों ने धक्का देकर उन्हें अलग किया। सुधीर ने गुस्से में कहा, "इसकी श्री अरविन्द पर हाथ लगाने की यह हिम्मत! इसे मैं अभी समाप्त कर दूंगा।"

एक साल बाद मई 1909 में मुकदमे का फैसला हुआ। जिसमें श्री अरविन्द 18 लोगों सहित निर्दोष मुक्त हुये जबकि बारीन, सुधीर और सत्रह अन्य लोगों को राजद्रोह के अपराध में आजीवन कारावास की सजा हुई और उन्हें कालापानी अण्डमान भेज दिया गया तथा उनका सारी प्रापर्टी जब्त कर ली गई। बाद में हाई कोर्ट में अपील के बाद सुधीर की सजा सात वर्ष कम हो गई। अण्डमान जाते समय सुधीर ने श्री अरविन्द से विदा ली और पूछा कि अण्डमान में इतने समय तक वहाँ के कष्टों को वे किस तरह सहन कर पायेंगे? इस पर श्री अरविन्द का उत्तर था कि, "तुम मेरा स्मरण करना मैं हमेशा तुम्हारे साथ रहूँगा।"

अण्डमान में इन विदेशी कैदियों के साथ अमानुषिक अत्याचार हुये जिन्हें सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। काम छः बजे शुरू होता था और लगातार छः बजे शाम तक चलता रहता। हाथ से नारियल की जटा निकालनी पड़ती और फिर जटा से रस्सी बनाने का कोटा निर्धारित था, इससे उनके हाथ छिल जाते और खून निकलने लगता, हाथ से खाना मुश्किल था। कोल्हू का वजनी जुआ कन्धे पर रखकर प्रतिदिन 30 पौण्ड तेल निकालना होता था

जिसका आधा भी बैल मुश्किल से निकाल पाते थे। कभी-कभी तीन लोगों को मिलाकर 80 पौण्ड तेल निकालना होता था और इस तरह सबको प्रतिदिन 40 मील चलना होता था। इस सब के बावजूद जमादार जोर जोर से चिल्लाता था-Run, Run, Run. जिस दिन कोटा पूरा ना होता था उस दिन खाना ना मिलता और रात भर काम करना पड़ता। जेलर की गालियाँ अलग से सुननी पड़तीं। प्रकारान्तर से यह कहा जा सकता है कि वह तेल नहीं बल्कि क्रान्तिकारियों का खून था। और वह खाना भी कैसा? ना खाने योग्य और गन्दा पानी, वह भी पेट भर नहीं। जब इतना शारीरिक काम होता तब भूख भी जोर की लगती तब बेचारे क्रान्तिकारियों को जानवरों की घास भी खानी पड़ती। सुधीर दा ने बताया कि इससे हमें यह सबक मिला कि भोजन को कभी 'वेस्ट' नहीं करना चाहिये।

यद्यपि अण्डमान में क्रान्तिकारियों को जो यातनायें दी गईं वे मनुष्य की कल्पना के बाहर हैं फिर भी यह सब उनकी आन्तरिक शक्ति को डिगा नहीं सका। इन सभी वीर योद्धाओं के भीतर एक आग जल रही थी- क्योंकि श्री अरविन्द ने उन्हें मंत्रदीक्षा जो दी थी-जब किसी युवा को जेल जाना पड़ता है तब वह खुशी के साथ जाता है और कहता, "मेरे उत्सर्ग का समय आ चुका है और हमें इसके लिये भगवान् को धन्यवाद देना चाहिये जो इस कार्य के लिये मेरा चुनाव कर इस बलिवेदी पर मुझे लाया है ताकि मेरे देशवासियों का कल्याण हो सके। यह मेरे लिये आनन्द की महान् घड़ी है और मेरे जीवन की परिपूर्णता है।"





## आनंद सागर में आज ज्वार (रवीन्द्रनाथ ठाकुर )

### आनंद सागर में आज ज्वार आया है!

सब जन पतवार थाम कर बैठो !  
खेते चलो, खेते चलो, अनथक !  
बोझ कितना भी हो, दुःख भरी नाव  
पार उतारो !  
लहरों पर तैरकर हम जायेंगे,  
प्राण जायें तो जाने दो !

आनंद सागर में आज ज्वार आया है !  
कौन है जो पीछे से पुकार रहा है ?  
कौन है जो आगे बढ़ने से रोक रहा है ?  
भय की याद कौन दिलाता है ?  
इस भय से हम परिचित हैं।  
कौन से शाप, कौन से ग्रह-दोष ने हमें सुख की  
मरुभूमि में मौन कर दिया है ?  
पाल की डोरी कस कर पकड़ो और गाते चलो,  
गाते चलो !

आनंद के सागर में आज ज्वार आया है ।

### आदर का आसन और आराम की शैया

आदर का आसन और आराम की शैया तुम्हारे  
लिये नहीं।  
उनका लोभ छोड़, आनंद-मग्न हो, राह पर  
निकल चलो !  
आओ, सब साथ मिलकर बाहर आयें!

आज की यात्रा अपमानितों के घर की दिशा  
में हो ।

आज हम निन्दा को ही भूषण मान  
धारण करेंगे, कांटों का कंठहार पहनेंगे।  
आज अपमान का भार सिर-माथे  
ले लेंगे और  
दुःखी जनों के बचे-खुचे निवास की धूल में  
अपना माथा टिकालेंगे  
त्याग के रिक्त पात्रों को आनन्द-रस से भर  
लेंगे !

### निन्दा, दुःख व अपमान के

निन्दा, कुछ व अपमान के कितने ही आघात  
उनसे कुछ हानि नहीं होगी, यह मैं जानता हूँ ।  
जब मैं धूलि पर बैठता हूँ, तो आसन पाने का तो  
लोभ ही क्यों हो ?  
जब दीन होता हूँ, तो निःसंकोच तेरा प्रसाद  
मांग लेता हूँ ।  
लोग जब मेरी स्तुति करते हैं और सुख मुझे  
उपकृत करता है  
तो मैं जान जाता हूँ कि इसमें कोई भ्रम है ।  
फिर भी मैं वह भार माथे पर उठाये फिरता हूँ  
और तेरे समीप आने का मुझे अवकाश नहीं  
मिलता ।



## बांग्लादेश-श्री अरविन्द केन्द्र में मातृ सरोवर का उद्घाटन गोविन्दा



बांग्लादेश श्री अरविन्द केन्द्र में मातृ सरोवर का उद्घाटन  
करती हुयीं तारा दीदी

28 तारीख को तारा दीदी व तपन दा ढाका पहुँचे जहां संध्या सत्र में तारा दीदी ने श्री अरविन्द व श्री माँ के बारे में सभी के प्रश्नों के उत्तर दिये व दुर्गा स्तोत्र का पाठ किया। यहाँ श्री अरविन्द से जुड़े साधक नियमित रूप से प्रतिदिन एकत्र होते हैं और श्री अरविन्द के विचारों पर विचार विमर्श करते हैं। कलकत्ता के भारतीय संस्कृति भवन में तारा दीदी की वार्ता हुयी जिसके बाद

25 मई 2017 को दिल्ली आश्रम की सुश्री तारा दीदी द्वारा बांग्लादेश के बबूरा केन्द्र में मातृसरोवर का उद्घाटन किया गया। ढाका से बबूरा की दूरी लगभग 6 घंटे की है। कार्यक्रम का आयोजन डॉ० विपिन राय के सौजन्य से किया गया। इस कार्यक्रम में दिल्ली आश्रम से तारा दीदी व तपन दा सहित लगभग 20,000 व्यक्ति उपस्थित थे। उद्घाटन के बाद बाउल संगीत का कार्यक्रम हुआ। 26 मई को सब खुलना पहुँचे जहाँ श्री अरविन्द केन्द्र द्वारा संचालित स्कूल के विद्यार्थियों ने सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन किया। यहाँ श्री अरविन्द के पिताजी श्री के डी घोष भी चिकित्सक के रूप में कार्यरत थे।

उन्होंने श्री अरविन्द के जन्म स्थल श्री अरविन्द भवन, रामकृष्णमिशन व आन्नदमयी माँ का आश्रम देखा और शांतिनिकेतन का भी भ्रमण किया।

वर्तमान में श्री अरविन्द के पिताजी श्री कृष्णमोहन घोष के नाम पर एक सड़क भी है और श्री अरविन्द के पिताजी के कार्यालय कक्ष के अवशेष भी सुरक्षित हैं। अगले दिन सुन्दरवन के भ्रमण का कार्यक्रम बना। सबने प्रकृति की सुन्दरता से परिपूर्ण सुन्दरवन का आनन्द उठाया। ढाका केंद्र में प्रश्नोत्तर सत्र हुआ।



## श्रद्धा सुमन

### रूपा गुप्ता



श्री अरविंद आश्रम दिल्ली  
के सस्थापक श्री सुरेन्द्रनाथ  
जौहर 'चाचाजी' का जन्मोत्सव  
13 अगस्त 1983

श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर 'चाचाजी' ने अपना पूरा जीवन श्री माँ की आराधना में अर्पित कर दिया। उन्होंने ना केवल स्वयं को वरन अपने पूरे परिवार को श्री अरविंद के 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गापि गरीयसि' की अवधारणा पर समर्पित कर दिया। भारत की आजादी की लड़ाई में तो वे अपनी किशोरावस्था से ही कूद चुके थे, श्री माँ और श्री अरविंद के सम्पर्क में आने के बाद इस में भागवत सत्ता का पूरा बल भी सम्मिलित हो गया और उन्होंने अपना पूरा बल, कर्म व सम्पत्ति इस सेवा में लगा दिया।

उनके समस्त कार्य निःस्वार्थ त्याग, पूर्ण निष्ठा व उच्च मनोबल के रूपक रहे हैं। दिल्ली आश्रम,

मातृ अन्तर्राष्ट्रीय विद्यालय, सफदरजंग मकबरे से कुतुबमीनार तक जाने वाले मार्ग का नामकरण 'श्री अरविंद मार्ग' व राष्ट्रपति भवन में श्री अरविंद के चित्र की स्थापना केवल उन्हीं के महत् प्रयासों का परिणाम रहा है। हिमालय की गोद में माँ नैनादेवी के अंचल में बसी देवभूमि नैनीताल वननिवास में श्री अरविंद के रैलिवेक्स की स्थापना का श्रेय भी श्री जौहर जी को ही है। उनकी 'फकीर' उपनाम उनके पूरे जीवन की कथा कह देता है।

उनकी लेखनी से उनके अनुभव अत्यन्त मनोरंजक रूप में प्रसूत हुये हैं। उनके द्वारा लिखे गये अनेक संस्मरणों का कोई अन्त नहीं है और वे आज हम सब के प्रेरणा स्त्रोत बने हुए हैं।

पूज्य चाचाजी के जन्मदिवस पर हम उन्हें अपना हार्दिक श्रद्धास्रेह अर्पित करते हैं।



# सावित्री

## -विमला गुप्ता

### अवतरण

इस प्रसंग के साथ ही "सावित्री" महाकाव्य का पर्व तीन समाप्त हो जाता है। प्रथम तीन पर्व चौबीस सर्गों में समाहित हैं जिनमें से 22 सर्ग अश्वपति के योग को समर्पित हैं। पाश्चात्य महाकाव्यों की तरह यह आख्यान कथा के मध्य में आने वाली घटना से शुरू होता है। पर्व 1 के प्रथम 2 सर्ग, उषा के आगमन के उस दिवस का वर्णन करते हैं, जिस दिन सत्यवान की मृत्यु पूर्व निर्धारित है। सर्ग 3, 4 व 5 अश्वपति ने अपनी आध्यात्मिक सिद्धि के अंगीकार किया है। पर्व दो का पाँचवा सर्ग इस महाकाव्य का सबसे लम्बा सर्ग है जिसमें चेतना के उन विभिन्न लोकों का वर्णन आया है जिन्हें अश्वपति ने अपनी तपः यात्रा के दौरान खोज लिया है। पर्व तीन का चौथा सर्ग अश्वपति के योग की वैश्विक सिद्धि और नूतन सृष्टि का विवरण देता है। दिव्यमाता के वरदानी शब्द अश्वपति की अभिलाषा और अभीप्सा की पूर्ति पर "तथास्तु" की छाप लगा देते हैं। यह अश्वपति की वह महान् अभीप्सा एवं अभिलाषा है जो उसने पृथ्वी पर जन्मी मानव जाति के जीवन की परिपूर्णता के हेतु "दिव्य माता" से निवेदित की थी। पर्व चार में, जिसमें चार सर्ग सम्मिलित हैं सावित्री के युवती रूप के सौन्दर्य एवं गुणों का विवरण आता है।

सावित्री कई कलाओं, हस्तकलाओं एवं अन्य तमाम विद्याओं में पारंगत हो चुकी है। उसके बाहरी व्यक्तित्व में उसकी आन्तरिक ज्योतिर्मय शक्ति उतनी ही परिलक्षित होती है जितना कि उसका शारीरिक सौन्दर्य एवं सौष्ठव। स्वाभाविक ही उसके पिता अश्वपति की दृष्टि उसे उम्र की

उस देहरी पर पहुँची देख सतर्कता से निहारती है। एक दिन अश्वपति को एक अन्तर्वाणी सुनाई देती है जो उन्हें सावित्री के जन्म, जीवन, उसके ऊँचे प्रयोजन और लक्ष्य तथा महान् व्रत का स्मरण कराती है। अतः अश्वपति सावित्री को बाहर के जग-जीवन में घूमने भेजते हैं जहाँ प्रेम और नियति उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। सावित्री अपनी खोज के लिए रवाना होती है।

यह प्रसंग हमें पर्व पाँच पर ले आता है जिसे श्री अरविन्द ने "प्रेम का पर्व" शीर्षक दिया है। मूल महाभारत कथा में इस पर्व को कोई विशेष महत्व नहीं दिया गया है। इस पर्व के पहले तीन सर्गों में सावित्री सत्यवान की प्रथम भेंट का जो वर्णन आया है वह कविता की दृष्टि से बहुत मनोरंजक है कि कैसे वे एक-दूसरे को देखते ही पूर्व निर्दिष्ट आत्म-संगी के रूप में पहचान लेते हैं। यदि श्री अरविन्द ने इन्हीं तीन सर्गों को लिखा होता तो भी काव्य कला की दृष्टि से श्रेष्ठता का एक अद्वितीय नमूना छोड़ गये होते। प्रेम की पवित्रता और स्निग्धता, मानवी प्रेम के अनूठे आदर्श और प्रेम की परिपूर्णता की निर्मल गुणवत्ता के लिए ये तीनों सर्ग विश्व-साहित्य में अपना सानी नहीं रखते। "सावित्री" महाकाव्य वास्तव में प्रेम की अनूठी अभिव्यक्ति है। मैं यहाँ अपने को इन सर्गों से कुछ पद्यांश पढ़ने से रोक नहीं पा रहा हूँ। आप इन पंक्तियों को सुनें जिनमें सावित्री सत्यवान के प्रथम साक्षात्कार का वर्णन आया है: -

और सत्यवान ने अपनी आत्मा के द्वारों से बाहर झाँका

और अनुभव किया उसकी मधुर वाणी के सम्मोहन को  
जिसने उसके यौवन के नील लोहित परिमंडल को भरपूर कर दिया और धारण किया।  
उसने वहन किया अपने अन्दर सावित्री के अपूर्व सौन्दर्य से उत्पन्न  
झकझोर देने वाले चमत्कारपूर्ण सुन्दर मुख को एक अनजाने फूल समान मुखड़े के माधुर्य से वशीभूत होकर  
उस ललाट के चारों ओर खुलते आत्म-अन्तरिक्ष की ओर खिंचा  
वह बढ़ा उस स्वप्नदर्शन की ओर जैसे समुद्र उठता है, चन्द्रमा की ओर।  
उसे एक मधुर पीड़ा की अनुभूति हुई जो हृदय के परिवर्तन से उपजी थी  
भौतिक वस्तुओं में भी उसने एक अनोखी दिव्यता का किया स्पर्श  
उसकी आत्मकेन्द्रित प्रकृति ऐसे धराशायी हो गई  
जैसे किसी अग्नि में डाल दी गई हो  
और उसका जीवन किसी दूसरे के जीवन में हो गया विसर्जित।

(पर्व 5, सर्ग 2, पृष्ठ 396)

और अब इन पंक्तियों को भी सुनिये जब सावित्री सत्यवान को अपने परिणय का हार पहनाती है और भक्तिभाव से झुककर उसके उसके पाँव छूती है, तब सत्यवान उसे अपने आलिंगन में ले लेता है: –

उसने सावित्री को अपने आलिंगन में समेट लिया  
उसके चारों ओर उसका आलिंगन एक चिह्न बन गया

मंथर अन्तरंग चिरकाल पर्यन्त एक प्रगाढ़ सान्निध्य का  
बन गया आगामी आनन्द का प्रथम मधुर सारांश  
सकल दीर्घ जीवन की एक भावप्रवण संक्षिप्तता।  
दो आत्माओं के मिलन के उस प्रथम मधुर क्षण में  
सावित्री ने अपनी सत्ता को सत्यवान में प्रवाहित होने दिया  
अनुभव मानों वह लहरों में बह रही हो  
जैसे एक नदी विशाल समुद्र में अपने को विसर्जित कर देती है।  
सदा उसमें ही रमायी रहती और सामीप्य के आनन्द को पाती है  
उसकी चेतना सत्यवान में डूबकर उसी की तरंग बन गई  
उसका द्वैत, उसकी पृथकता सत्यवान् में विसर्जित हो गई,  
जैसे एक तारों भरा आकाश उल्लसित धरा को घेरे रहता है  
सत्यवान ने सावित्री को आनन्द की बाँहों में बाँध लिया  
और दोनों के लिए बाहरी जगत् कहीं लुप्त हो गया  
उसी असीम एकान्त ने दोनों को एक-प्राण कर दिया  
सत्यवान को सावित्री बाहुबंधन की पूर्ण प्रतीति थी  
और उसने उसे व्याप्त हो जाने दिया सम्पूर्ण अपनी आत्मा की गहराइयों तक



जैसे कि एक विश्व भर उठा हो दूसरे विश्व की  
 प्राण सत्ता से  
 जैसे ससीम जगत असीम में से जाग उठता है  
 जैसे कि ससीम अनन्त की ओर खुल जाता है  
 ऐसे ही वे दोनों कुछ क्षणों के लिये एक दूसरे  
 में समा गये  
 और तब फिर सुख की अपनी उस लम्बी  
 मूर्च्छना से जगकर  
 वे एक नये अन्तरात्मा और नये विश्व में आ गये  
 मानों उनके लिये सम्पूर्ण सृष्टि जगत् ही बदल  
 गया था  
 अब वे एक-दूसरे का अभिन्न अंश बन चुके थे।

(पर्व 5, सर्ग 3, पृष्ठ 410)

अब हम पर्व छः पर आते हैं जिसे "भाग्य का पर्व"  
 नाम दिया गया है। इसमें दो सर्ग हैं- पहला सर्ग मानव-  
 जीवन में अनवरत चल रहे इस नाटक पर बड़े कुशल ढंग  
 से प्रकाश डालता है और दूसरा सर्ग आस्तिकतावाद के  
 दर्शनों की सर्वाधिक कठिन समस्याओं में से एक समस्या-  
 मानव जीवन में दुःख और अशुभ की समस्या-पर गहन  
 दृष्टि से विचार करता और उसका विश्लेषण करता है।

नवपरिणीता सावित्री अब शीघ्र ही अपने पिता के  
 पास लौटती है और उन्हें सूचित करती है कि उसकी यात्रा  
 का उद्देश्य पूरा हुआ है। देवर्षि नारद उस समय अश्वपति  
 से भेंट करने के लिये वहाँ आये हुये हैं। सावित्री कहती  
 है-

मेरे पिता ! द्युत्मसेन के पुत्र सत्यवान से  
 मैं मिली हूँ गहन अरण्य के एकान्त स्थल पर  
 और मैंने उसे वरण कर लिया है, यह निश्चित है।

(पर्व 6, सर्ग 1, पृष्ठ 424)

सत्यवान का नाम सुनते ही अश्वपति सहसा अपनी  
 अन्तर्दृष्टि से एक काली छाया को गुजरते हुये देखते हैं

लेकिन फिर वे यह देखकर आश्वासित हो जाते हैं कि  
 उस छाया के पीछे एक अप्रत्याशित, अलौकिक प्रकाश  
 जा रहा है। वे सावित्री को उसके चयन के प्रति अपनी  
 स्वीकृति दे देते हैं। देवर्षि नारद और अश्वपति के बीच  
 हो रहा वार्तालाप सावित्री की माता को एक आशंका के  
 अहसास से भर देता है। उसे सावित्री का सत्यवान को  
 वरण करने का निर्णय सहज और सुखद नहीं प्रतीत हो  
 रहा है। ये लोग उससे कुछ छुपा रहे हैं जो अप्रिय है।  
 वह नारद से, जो भविष्य दर्शन की क्षमता रखते हैं, सब  
 कुछ सही-सही बता देने का अनुरोध एवं प्रार्थना करती  
 है। नारद सत्यवान के विषय में पूर्ण आशान्वित हैं। उसे  
 वे पृथ्वी और स्वर्ग को मिलाने वाला एक करिश्मा मानते  
 हैं, लेकिन साथ ही कहते हैं :-

आया है स्वर्ग का वैभव भू पर, लेकिन अति  
 महान् वह टिक ना सकेगा  
 द्रुतपंखी बारह माह मिले हैं इन दोनों को  
 इस दिन के वापस आते ही, सत्यवान की मृत्यु  
 है विधि-निश्चित।

(पर्व 6, सर्ग 1, पृष्ठ 431)

देवर्षि की यह भविष्यवाणी सुनकर कि सत्यवान एक  
 वर्ष बाद आज के ही दिन मृत्यु को प्राप्त होगा, सावित्री  
 की माता अत्यन्त अधीर हो उठती हैं और सावित्री से  
 आग्रह करती हैं कि वह दूसरी बार फिर जाये और अपने  
 लिये कोई दूसरा वर चुने। लेकिन सावित्री अपने निर्णय  
 में अटल है और माँ के आग्रह को मानने से इन्कार कर  
 देती है। जिन शब्दों में वह अपने भाग्य को ललकारती है  
 उनमें उसकी दृढ़ आत्मशक्ति का हमें पहली बार परिचय  
 मिलता है-

"मेरे हृदय ने जिसे एक बार कर लिया वरण,  
 वह नहीं करेगा चयन दूसरा  
 जो "शब्द" बोल दिया वह नहीं मिटया जा  
 सकेगा

वह भगवान् की पुस्तक में है लिखा जा चुका....  
मेरे हृदय ने अपने सत्य को सत्यवान में कर  
दिया है विलय  
मेरा विरोधी भाग्य भी नहीं मिटा सकता इसके  
हस्ताक्षर को,  
उसकी मुहर को, ना तो भाग्य, ना मृत्यु, ना  
काल पिघला सकता है  
भाग्य मेरे साथ जो कर सकता है करे,  
मैं मृत्यु से अधिक प्रबल हूँ और भाग्य से  
अधिक महान्  
सृष्टिपर्यन्त विद्यमान रहेगा मेरा प्रेम,  
मेरी अमरता के समक्ष असहाय होकर दुर्भाग्य  
मुझसे दूर होगा।  
यदि एक ही वर्ष मेरा है, तो वही है मेरा पूरा  
जीवन  
किन्तु मैं जानती हूँ कि जीना, प्रेम करना और  
मर जाना माल नहीं  
है मेरा भाग्य-विधान  
मैं अवगत हूँ मेरी आत्मा क्यों आई है पृथ्वी पर,  
और मैं कौन हूँ, और वह कौन है जिसे मैंने  
किया है प्यार  
मैंने उसे अपने अनश्वर आत्मा से अवलोका है  
मैंने सत्यवान में प्रभु को अपनी ओर मुस्काते  
पाया है  
मैंने मानवी मुख में देखा है "परम चैतन्य" को।

(पर्व 6, सर्ग 1, पृष्ठ 432, 435, 436)

असहाय और आकुल सावित्री की माता तब नारद  
की ओर मुड़कर अपने हृदय का आक्रोश प्रकट करती  
है। सावित्री ने ऐसा क्या किया जो उसे अधम, क्रूर भाग्य  
मिला? ऐसा क्यों हुआ कि मेरी पुत्री की उस नवयुवक  
से भेंट हुई और वह उसके प्रेम में पड़ गई जिसका माल  
बारह महीने का जीवन है? किसने यह भीषण दुःखमय

जगत् बनाया है जहाँ दुःख और सन्ताप अपनी परछाई  
हर वस्तु पर डालते रहते हैं? भगवान् ऐसा निर्दयी जगत्  
क्यों और कैसे बना सका है? यह भगवान् ही है या कोई  
दूसरी शक्ति जिसे भगवान् नियन्त्रित करने में अक्षम हैं?  
कैसे भगवान् संसार के अनिष्टों, यातनाओं र सन्तापों के  
प्रति इतने उदासीन और हृदयहीन हो सकते हैं?

नारद बहुत धीरजपूर्वक उसकी बातें सुनते हैं कि  
और फिर समझाते हैं कि दुःख का वास्तविक स्वभाव  
क्या है और भौतिक स्तर की योजना में उसकी भूमिका  
और स्थान क्या है। मनुष्य अज्ञान से जकड़ा हुआ होने के  
कारण अपनी पीठ भगवान् की ओर से फेर लेता है। उसे  
अज्ञान से जगाना ही होगा। दुःख और क्लेश अचेतना से  
उपजे हैं और अपना एक विशेष स्थान रखते हैं। वे मनुष्य  
के प्रमाद और अवरोध को तोड़ते हैं।

नारद के इन शब्दों को ध्यान से सुनिये :-

दुःख देवों का हथौड़ा है जो तोड़ देता है  
स्थूल हृदय के निष्क्रिय अवरोध को  
उसके प्रमाद की तन्द्रा एक जीवन्त पाषाण की  
तरह है  
यदि हृदय ना हो पाता बेबस कामना और रूढ़न  
से  
उसका अन्तरात्मा पड़ा रहता निष्क्रिय स्वान्तः  
सुखाय की मुद्रा में  
और कभी ना विचारता आगे विकास करना,  
और कभी ना सीखता सूर्य की ओर उठना।  
दुःख प्रकृति माता का हाथ है, जो अनवरत  
गढ़ता है मनुष्य को  
उत्कृष्ट रूप देने हेतु, वह प्रेरणाप्रद एक श्रम है  
जो दैवी निष्ठुरता से छेनी द्वारा करता है टंकन  
एक अनिच्छुक ढाँचे में  
यद्यपि इन मानव शिल्पी देवों का भीषण स्पर्श

असहनीय कष्टप्रद है स्थूल शरीरी नस-नाड़ियों  
के लिये  
पर वह ज्योतिर्मय आत्मा विकसित होती है  
आन्तरिक शक्ति में  
और अनुभव करती है एक प्रबल आनन्द हर  
भीषण आघात से।

(पर्व 6, सर्ग 2, पृष्ठ 443, 444)

नारद सावित्री की माता को बताते हैं कि विकास-क्रम की वर्तमान अवस्था में दुःख और पीड़ा की आवश्यकता है, उन्हें हमारे सद्वस्वरूप को एक अनगढ़ पाषाण से छेदकर निकालना है जिसमें वह अचल पड़ा है। एक दिन ऐसा आ सकता है जब इस कष्टदायक देह-यन्त्र की जरूरत ही ना पड़े।

नारद फिर आगे उसे बताते हैं कि वे लोग भी जो संसार को बचाने हेतु आये, उन्हें भी उन सभी कष्टों का भागीदार बनाना पड़ा है, इसके क्रॉस को वहन करना पड़ा है। इस जगत् के त्राण हेतु भगवान् के दूत को अशुभ और दुःख के मूल तक उतरना पड़ा है और फिर उसे शुभ और आनन्द में रूपान्तर करना पड़ा है। ये ही उनके अवतरण का गौरव और महिमा है :-

जब प्रभु का कोई सन्देश-वाहक आता है संसार  
की सहायता हेतु  
और धरा-चेतना को उच्च तत्वों की ओर उठाता  
है  
उसे भी अप्रभावित रहकर पृथ्वी के भाग्य के  
उस जुए को वहन करना है जिसे वह उतारने  
आया है  
उसे भी झेलनी है वे पीड़ाएँ जिनका उसे करना  
है निवारण।  
कैसे करेगा वह उपचार उन व्याधियों का  
जिनको उसने स्वयं नहीं झेला?  
समस्त प्राणियों का दुःख आयेगा उसके पास

खटखटायेंगा उसके द्वार और उसी के अन्दर  
करेगा निवास।

सदियों का रुदन उसकी आँखों में आवागमन  
करता है

संसार का विष उसके कंठ को धब्बों से भर देता  
है

वह मरता है ताकि विश्व नवजन्म पा सके और  
जी सके

बहुत दुष्कर है जग-परित्राता का भारी कार्य

यह विश्व ही बन जाता है उसका विरोधी

वे ही बन जाते हैं उसके शत्रु जिन्हें वह बचाने  
आया है

यह संसार अपने अज्ञान से प्रेम करता है

इसका अन्धकार प्रकाश से मुँह मोड़ता है

यह ताज के बदले में उसे क्रॉस पर चढ़ाता है।

(पर्व 6, सर्ग 2, पृष्ठ 446, 447)

यह सब सुनकर राजा अश्वपति देवर्षि नारद से पूछते हैं कि क्या सावित्री के पास संसार के इन दुःखों और क्लेशों का कोई समाधान है और क्या अपने ही भाग्य के दुःख का उसके पास कोई उत्तर है? नारद जवाब देते हैं, "हाँ है, वास्तव में है क्योंकि सावित्री में एक ऐसी महानता है जो उसे स्वयं को और जगत् को रूपान्तरित कर सकती है। नारद सावित्री की माता से यह विनती करते हैं कि वह सावित्री और उसके भाग्य-विधान के बीच बाधा ना बने। वे सावित्री के माता-पिता को यह आश्वासन देते हैं कि सावित्री अपने भाग्य से अधिक बलवान है। नारद के आश्वासनयुक्त इन शब्दों को सुनिये :-

जैसे एक एकाकी सितारा आकाश में घूमता है  
उसकी असीम व्यापकता से अविस्मित  
अप्रभावित  
अपने ही आलोक में अनन्त काल तक करता  
है भ्रमण,

ऐसे ही जो महान हैं, वे अकेले होकर हैं अधिक  
बलवान...

एक दिन ऐसा आ सकता है जब वह नितांत  
निरावलम्ब खड़ी होगी

अपने और जगत् के विनाश के एक खतरनाक  
मुहाने पर

वहन करती हुई जगत् के भविष्य को अपने  
एकाकी सीने पर।

मनुष्य की आशा को अपने निःसंग हृदय में  
धरकर

वह विजित होगी या परास्त, निराशा की उस  
एक अन्तिम कगार पर...

वह देवों से नहीं करेगी आर्त पुकार,  
क्योंकि एकमात्र वही है स्वयं जगत् की रक्षक,  
इसी कार्य हेतु एक नीरव महाशक्ति, व्रत धारण  
कर नीचे उतरी

उसी के रूप में चेतन संकल्प ने मानवी आकार  
किया धारण

वही एकमात्र रक्षक है स्वयं की, और बचा  
सकती है विश्व को।

(पर्व 6, सर्ग 2, पृष्ठ 406-61)



## श्री अरविन्द का उत्तरपाड़ा भाषण

### शेष भाग-

जब छोटी अदालत में मुकदमा शुरू हुआ और हम लोग मजिस्ट्रेट के सामने खड़े किये गये तो वहाँ भी मेरी अन्तर्दृष्टि मेरे साथ थी। भगवान् ने मुझसे कहा, "जब तुम जेल में डाले गये थे तो क्या तुम्हारा हृदय हताश नहीं हुआ था, क्या तुमने मुझे पुकारकर यह नहीं कहा था, कहाँ, तुम्हारी रक्षा कहाँ है? लो अब मजिस्ट्रेट की ओर देखो, सरकारी वकील की ओर देखो।" मैंने देखा कि अदालत की कुर्सी पर मजिस्ट्रेट नहीं, स्वयं वासुदेव, नारायण बैठे थे। अब मैंने सरकारी वकील की ओर देखा पर वहाँ कोई सरकारी वकील नहीं दिखायी दिया, वहाँ तो श्रीकृष्ण बैठे थे, मेरे सखा, मेरे प्रेमी वहाँ बैठे मुस्कुरा रहे थे।

उन्होंने कहा, "अब डरते हो? मैं सभी मनुष्यों में विद्यमान हूँ और उनके सभी कर्मों और शब्दों पर राज करता हूँ। मेरा संरक्षण अब भी तुम्हारे साथ है और तुम्हें डरना नहीं चाहिये। तुम्हारे विरुद्ध जो यह जो यह मुकदमा चलाया गया है उसे मेरे हाथों में सौंप दो। यह तुम्हारे लिए नहीं है। मैं तुम्हें यहाँ मुकदमे के लिये नहीं बल्कि किसी और काम के लिए लाया हूँ। यह तो मेरे काम का एक साधन मात्र है, इससे अधिक कुछ नहीं।"

इसके बाद जब सेशन जज की अदालत में विचार आरम्भ हुआ तो मैं अपने वकील के लिए ऐसी बहुत-सी हिदायतें लिखने लगा कि गवाही में मेरे विरुद्ध कही गयी बातों में से कौन-सी बातें गलत हैं और किन-किन पर गवाहों से जिरह की जा सकती है। तब एक ऐसी घटना घटी जिसकी मैं आशा नहीं करता था। मेरे मुकदमे में पैरवी के लिये जो प्रबन्ध किया गया था वह एकाएक बदल गया और मेरी सफाई के लिए एक दूसरे ही वकील खड़े हुये। वे अप्रत्याशित रूप से आ गये- वे मेरे एक मित्र थे, किन्तु मैं नहीं जानता था कि वे आयेंगे। आप सभी ने

उनका नाम सुना है जिन्होंने मन से सभी विचार निकाल बाहर किये और इस मुकदमे के सिवा सारी वकालत बन्द कर दी, जिन्होंने महीनों लगातार आधी-आधी रात तक जागकर मुझे बचाने के लिए अपना स्वास्थ्य बिगाड़ लिया- वे हैं श्रीचित्तरंजन दास।

जब मैंने उन्हें देखा तो मुझे सन्तोष हुआ, फिर भी मैं समझता था कि हिदायत लिखना जरूरी है। इसके बाद यह विचार हटा दिया गया और मेरे अन्दर से आवाज आयी, "यही आदमी है जो तुम्हारे पैरों के चारों ओर फैले जाल से तुम्हें बाहर निकालेगा। तुम इन कागजों को अलग रख दो। इन्हें तुम हिदायतें नहीं दोगे, मैं दूंगा।" उस समय से इस मुकदमे के सम्बन्ध में मैंने अपनी ओर से अपने वकील से एक शब्द भी नहीं कहा, कोई हिदायत नहीं दी और यदि कभी मुझसे कोई सवाल पूछा गया तो मैंने सदा यही देखा कि मेरे उत्तर से मुकदमे को कोई मदद नहीं मिली। मैंने मुकदमा उन्हें सौंप दिया और उन्होंने पूरी तरह उसे अपने हाथों में ले लिया, और उसका परिणाम आप जानते ही हैं।

मैं सदा यह जानता था कि मेरे सम्बन्ध में भगवान् की क्या इच्छा है, क्योंकि मुझे बार-बार यह वाणी सुनायी पड़ती थी, मेरे अन्दर से सदा यह आवाज आया करती थी, "मैं रास्ता दिखा रहा हूँ, इसलिये डरो मत। मैं तुम्हें जिस काम के लिये जेल में लाया हूँ अपने उस काम की ओर मुड़ो और जब तुम जेल से बाहर निकलो तो यह याद रखना- कभी डरना मत, कभी हिचकिचाना मत। याद रखो यह सब मैं कर रहा हूँ, तुम या और कोई नहीं। अतः चाहे जितने बादल घिरें, चाहे जितने खतरे और दुःख-कष्ट आयें, कठिनाईयाँ हों, चाहे जितनी असंभवताएं आयें, कुछ भी असंभव नहीं है, कुछ भी कठिन नहीं



है। मैं इस देश और इसके उत्थान में हूँ, मैं वासुदेव हूँ, मैं नारायण हूँ। जो कुछ मेरी इच्छा होगी वही होगा, दूसरों की इच्छा से नहीं। मैं जिस चीज को लाना चाहता हूँ उसे कोई मानव-शक्ति नहीं रोक सकती।"

इस बीच वे मुझे उस एकान्त कालकोठरी से बाहर ले आये और मुझे उन लोगों के साथ रख दिया जिन पर मेरे साथ ही अभियोग चल रहा था। आज आपने मेरे आत्म-त्याग और देश-प्रेम के बारे में बहुत कुछ कहा है। मैं जब से जेल से निकला हूँ तब से इसी प्रकार की बातें सुनता आ रहा हूँ, किन्तु ऐसी बातें सुनने से मुझे लज्जा आती है, मेरे अन्दर एक तरह की वेदना होती है। क्योंकि मैं अपनी दुर्बलता जानता हूँ, मुझे अपने दोषों और त्रुटियों का विचार है। मैं इन बातों के बारे में पहले भी अस्था ना था और जब मेरे एकान्तवास में, ये सब की सब मेरे विरुद्ध खड़ी हो गयीं तो मैंने इनका पूरी तरह अनुभव किया। तब मुझे मालूम हुआ कि मनुष्यों की नाते में दुर्बलताओं का एक ढेर हूँ, मुझमें ताकत तभी आती है जब कोई उच्चतर शक्ति मेरे अन्दर आ जाए।

अब मैं उन युवकों के बीच में आया और मैंने देखा कि उनमें से बहुतों में एक प्रचण्ड साहस और अपने को मिटा देने की शक्ति है और उनकी तुलना में मैं कुछ भी नहीं हूँ। इनमें से एक-दो ऐसे थे जो केवल बल और चरित्र में ही मुझसे बढ़कर नहीं थे- ऐसे तो बहुत थे- बल्कि मैं जिस बुद्धि की योग्यता का अभिमान रखता था, उसमें भी बड़े हुए थे। भगवान् ने मुझसे फिर कहा, "यही वह युवक-दल, वह नवीन और बलवान जाति है जो मेरे आदेश से ऊपर उठ रही है। ये तुमसे अधिक बड़े हैं। तुम्हें भय किस बात का है? यदि तुम इस काम से हट जाओ या सो जाओ तो भी काम पूरा होगा। कल तुम इस काम से हटा दिये जाओ तो ये युवक तुम्हारे काम को उठा लेंगे और इतने प्रभावशाली

ढंग से करेंगे जैसे तुमने भी नहीं किया। तुम्हें इस देश को एक वाणी सुनाने के लिए मुझसे कुछ बल मिला है।" यह वाणी दूसरी बात थी जो भगवान् ने मुझसे कही।"

इसके बाद अचानक कुछ हुआ और क्षणभर में मुझे एक कोठरी के एकान्तवास में पहुँचा दिया गया। एकान्तवास में मेरे अन्दर क्या हुआ यह कहने की प्रेरणा नहीं हो रही, बस इतना काफी है कि वहाँ दिन-प्रतिदिन भगवान् ने अपने चमत्कार दिखाये और मुझे हिन्दूधर्म के वास्तविक सत्य का साक्षात्कार कराया। पहले मेरे अन्दर अनेक प्रकार के सन्देह थे। मेरा लालन-पालन इंग्लैंड में विदेशी भावों और सर्वथा विदेशी वातावरण में हुआ था। एक समय मैं हिन्दूधर्म की बहुत-सी बातों को माल कल्पना समझता था कि इसमें बहुत कुछ केवल स्वप्न, भ्रम या माया है। परन्तु अब दिन-प्रतिदिन मैंने हिन्दूधर्म के सत्य को, अपने मन में, अपने प्राण में और अपने शरीर में अनुभव किया। वे मेरे लिए जीवित अनुभव हो गये और मेरे सामने ऐसी सब बातें प्रकट होने लगीं जिनके बारे में भौतिक विज्ञान कोई व्याख्या नहीं दे सकता। जब मैं पहले-पहल भगवान् के पास गया तो पूरी तरह भक्तिभाव के साथ नहीं गया था, पूरी तरह ज्ञानी के भाव से भी नहीं गया था। बहुत दिन हुए, स्वदेशी आन्दोलन शुरू होने के पहले और मेरे सार्वजनिक काम में घुसने से कुछ वर्ष पहले बड़ौदा में मैं उनकी ओर बढ़ा था।

उन दिनों जब मैं भगवान् की ओर बढ़ा तो मुझे उन पर जीवन्त श्रद्धा ना थी। उस समय मेरे अन्दर अज्ञेयवाद था, मैं नास्तिक था, सन्देहवादी था और मुझे पूरी तरह विश्वास ना था कि भगवान् हैं भी। मैं उनकी उपस्थिति का अनुभव नहीं करता था। फिर भी कोई चीज थी जिसने मुझे वेद के सत्य की ओर, गीता के सत्य की ओर, हिन्दूधर्म के सत्य की ओर आकर्षित किया। मुझे लगा कि इस योग में कहीं पर कोई महाशक्तिशाली सत्य अवश्य

है। इसलिए जब मैं योग की ओर मुड़ा और योगाभ्यास करके यह जानने का संकल्प किया कि मेरी बात सच्ची है या नहीं तो मैंने उसे इस भाव और प्रार्थना से शुरू किया। मुझे लगा कि इस योग में कहीं पर कोई महाशक्तिशाली सत्य अवश्य है, वेदान्त पर आधारित इस धर्म में कोई परम बलशाली सत्य अवश्य है।

मैंने कहा, "हे भगवान्, यदि तुम हो तो तुम मेरे हृदय की बात जानते हो। तुम जानते हो कि मैं मुक्ति नहीं माँगता, मैं ऐसी कोई चीज नहीं माँगता जो दूसरे माँगा करते हैं। मैं केवल इस जाति को ऊपर उठाने की शक्ति माँगता हूँ, मैं केवल यह माँगता हूँ, कि मुझे इस देश के लोगों के लिए, जिनसे मैं प्यार करता हूँ, जीने और कर्म करने की आज्ञा मिले और यह प्रार्थना करता हूँ कि मैं अपना जीवन उनके लिए लगा सकूँ।" मैंने योग-सिद्धि पाने के लिए बहुत दिनों तक प्रयास किया और अन्त में किसी हद तक मुझे मिली भी, पर जिस बात के लिए मेरी बहुत अधिक इच्छा थी उसके सम्बन्ध में मुझे संतोष नहीं हुआ। तब उस जेल के, उस कालकोठरी के एकान्तवास में मैंने उसके लिए फिर से प्रार्थना की। मैंने कहा,

"मुझे अपना आदेश दो, मैं नहीं जानता कि कौन-सा काम करूँ। मुझे एक सन्देश दो।" इस योगयुक्त अवस्था में मुझे दो सन्देश मिले। पहला यह था, "मैंने तुम्हें एक काम सौंपा है और वह है इस जाति के उत्थान में सहायता देना। शीघ्र ही वह समय आयेगा जब तुम्हें जेल के बाहर जाना होगा; क्योंकि मैं नहीं चाहता कि इस बार तुम्हें सजा हो या तुम अपना समय, औरों की तरह अपने देश के लिए कष्ट सहते हुए बिताओ। मैंने तुम्हें काम के लिए बुलाया है और यही वह आदेश है जो तुमने माँगा था। मैं तुम्हें आदेश देता हूँ कि जाओ और काम करो।"

दूसरा सन्देश आया, वह इस प्रकार था, "इस एक वर्ष के एकान्तवास में तुम्हें कुछ दिखाया गया है, वह चीज दिखायी गयी है जिसके बारे में तुम्हें सन्देह था, वह

है हिन्दूधर्म का सत्य। इसी धर्म को मैं संसार के सामने उठा रहा हूँ, यही वह धर्म है जिसे मैंने ऋषि-मुनियों और अवतारों के द्वारा विकसित किया और पूर्ण बनाया है और अब यह धर्म अन्य जातियों में मेरा काम करने के लिए बढ़ रहा है। मैं अपनी वाणी का प्रसार करने के लिए इस जाति को उठा रहा हूँ। यही वह सनातन धर्म है जिसे तुम पहले सचमुच नहीं जानते थे, किन्तु जिसे अब मैंने तुम्हारे सामने प्रकट कर दिया है। तुम्हारे अन्दर जो नास्तिकता थी, जो सन्देह था उनका उत्तर दे दिया गया है क्योंकि मैंने अन्दर और बाहर स्थूल और सूक्ष्म, सभी प्रमाण दे दिये हैं और उनसे तुम्हें संतोष हो गया है। जब तुम बाहर निकलो तो सदा अपनी जाति को यही वाणी सुनाना कि वे सनातन धर्म के लिए उठ रहे हैं, वे अपने लिये नहीं बल्कि संसार के ले उठ रहे हैं। मैं उन्हें संसार की सेवा के लिए स्वतन्त्रता दे रहा हूँ। अतएव जब यह कहा जाता है कि भारतवर्ष ऊपर उठेगा तो उसका अर्थ होता है सनातन धर्म ऊपर उठेगा। जब कहा जाता है कि भारतवर्ष महान् होगा तो उसका अर्थ होता है सनातन धर्म महान् होगा। जब कहा जाता है कि भारतवर्ष बढ़ेगा और फैलेगा तो इसका अर्थ होता है सनातन धर्म बढ़ेगा और संसार पर छा जायेगा। धर्म के लिए और धर्म के द्वारा भारत का अस्तित्व है। धर्म की महिमा बढ़ाने का अर्थ है देश की महिमा बढ़ाना। मैंने तुम्हें दिखा दिया है कि मैं सब जगह हूँ, सभी मनुष्यों और सभी वस्तुओं में हूँ, मैं इस आन्दोलन में हूँ और केवल उन्हीं के अन्दर कार्य नहीं कर रहा जो देश के लिये मेहनत कर रहे हैं बल्कि उनके अन्दर भी जो उनका विरोध करते और मार्ग में रोड़े अटकाते हैं।

मैं प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर काम कर रहा हूँ और मनुष्य चाहे जो कुछ सोचें या करें, पर वे मेरे होते हेतु की सहायता करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर सकते। वे भी मेरा ही काम कर रहे हैं; वे मेरे शत्रु नहीं बल्कि

मेरे यन्त्र हैं। तुम यह जाने बिना भी किस ओर जा रह हो, अपनी सारी क्रियाओं के द्वारा आगे बढ़ रहे हो। तुम करना चाहते हो कुछ और पर कर बैठते हो कुछ और। तुम एक परिणाम को लक्ष्य बनाते हो और तुम्हारे प्रयास ऐसे हो जाते हैं जो उससे भिन्न या उल्टे परिणाम लाते हैं। शक्ति का आविर्भाव हुआ है और उसने लोगों में प्रवेश किया है। मैं एक जमाने से इस उत्थान की तैयारी करता आ रहा हूँ और अब वह समय आ गया है। अब मैं ही इसे पूर्णता की ओर ले जाऊँगा।"

यही वह वाणी है जो मुझे आपको सुनानी है। आपकी सभा का नाम है 'धर्मरक्षिणी सभा।' अस्तु, धर्म का संरक्षण, दुनिया के सामने हिन्दूधर्म का संरक्षण और उत्थान-यही कार्य हमारे सामने है। परन्तु हिन्दूधर्म क्या है? वह धर्म क्या है जिसे हम सनातन धर्म कहते हैं? वह धर्म- हिन्दूधर्म इसी नाते है कि हिन्दूजाति ने इसको रखा है, क्योंकि समुद्र और हिमालय से घिरे हुए इस प्रायद्वीप के एकान्तवास में यह फला-फूला है, क्योंकि इस पविल और प्राचीन भूमि पर इसकी युगों तक रक्षा करने का भार आर्यजाति को सौंपा गया था।

परन्तु यह धर्म किसी एक देश की सीमा से घिरा नहीं है, यह संसार के किसी सीमित भाग के साथ विशेष रूप से और सदा के लिये बँधा नहीं है। जिसे हम हिन्दूधर्म कहते हैं वह वास्तव में सनातन धर्म है क्योंकि यही वह विश्वव्यापी धर्म है जो दूसरे सभी धर्मों का आलिंगन करता है। यदि कोई धर्म विश्वव्यापी ना हो तो वह सनातन भी नहीं हो सकता। कोई संकुचित धर्म, सांप्रदायिक धर्म, अनुदार धर्म, कुछ काल और किसी मर्यादित हेतु के लिए ही रह सकता है। यही एक ऐसा धर्म है जो अपने अन्दर विज्ञान के आविष्कारों और दर्शनशास्त्र के चिन्तनों का पूर्वाभास देकर और उन्हें अपने अन्दर मिलाकर जड़वाद पर विजय प्राप्त कर सकता है। यही एक धर्म है जो मानवजाति के दिल में यह बात बैठा देता है कि भगवान्

हमारे निकट हैं, यह उन सभी साधनों को अपने अन्दर ले लेता है जिनके द्वारा मनुष्य भगवानों के पास पहुँच सकते हैं यही ऐसा धर्म है जो प्रत्येक क्षण, सभी धर्मों के माने हुए इस सत्य पर जोर देता है कि भगवान् हर आदमी और हर चीज में हैं तथा हम उन्हीं में चलते-फिरते हैं और उन्हीं में हम निवास करते हैं। यही एक धर्म ऐसा है जो इस सत्य को केवल समझने और उस पर विश्वास करने में ही हमारा सहायक नहीं होता बल्कि अपनी सत्ता के अंग-अंग में इसका अनुभव करने में भी हमारी मदद करता है। यही एक धर्म है जो संसार को दिखा देता है कि संसार क्या है- वासुदेव की लीला। यही एक धर्म ऐसा है जो हमें यह बताता है कि इस लीला में हम अपनी भूमिका अच्छी-से-अच्छी तरह कैसे निभा सकते हैं, जो हमें यह दिखाता है कि इसके सूक्ष्म-से-सूक्ष्म नियम क्या हैं, इसके महान्-से-महान् विधान कौन-से हैं। यही एक ऐसा धर्म है जो जीवन की छोटी-से-छोटी बात को भी धर्म से अलग नहीं करता, जो यह जानता है कि अमरता क्या है और जिसने मृत्यु की वास्तविकता को हमारे अन्दर से एकदम निकाल दिया है।

यही वह वाणी है जो आपको सुनाने के लिए आज मेरी जबान पर रख दी गयी थी। मैं जो कुछ कहना चाहता था वह तो मुझसे अलग कर दिया गया है और जो मुझे कहने के लिए दिया गया है उससे अधिक मेरे पास कहने के लिए कुछ नहीं है। जो वाणी मेरे अन्दर रख दी गयी थी केवल वही आपको सुना सकता हूँ। अब वह समाप्त हो चुकी है। पहले भी एक बार जब मेरे अन्दर यही शक्ति काम कर रही थी तो मैंने आपसे कहा था कि यह आन्दोलन राजनीतिक आन्दोलन नहीं है और राष्ट्रीयता राजनीति नहीं, बल्कि एक धर्म है, एक विश्वास है, एक निष्ठा है। उसी बात को आज फिर मैं दोहराता हूँ, किन्तु आज मैं यह नहीं कहता कि राष्ट्रीयता एक विश्वास है, एक धर्म है, एक निष्ठा

है, बल्कि मैं यह कहता हूँ कि सनातनधर्म ही हमारे लिए राष्ट्रीयता है। यह हिन्दू जाति सनातन को लेकर ही पैदा हुई है, उसी को लेकर चलती है और उसी को लेकर पनपती है। जब सनातनधर्म की हानि होती है तब इस जाति की भी अवनति होती है और यदि

सनातनधर्म का विनाश संभव होता तो सनातनधर्म के साथ-ही-साथ इस जाति का भी विनाश हो जाता। सनातनधर्म ही है राष्ट्रीयता। यही वह सन्देश है जो मुझे आपको सुनाना है।



"हे प्रभु , मैं तुमसे, प्रार्थना करती हूँ कि यदि मेरी बुद्धि सीमित हो तो उसे विस्तृत कर, यदि मेरा ज्ञान धूमिल हो तो उसे आलोकित कर, यदि मेरा हृदय उष्मारहित हो तो उसे प्रदीप्त कर, यदि मेरा प्रेम तुच्छ हो तो उसे सघन कर, यदि मेरी भावनाएं अज्ञ एवं अहं ग्रस्त हों तो उन्हें सत्यता में जाग्रत व सचेतन बना ।

और मेरा यह 'मैं' जो तेरी प्रार्थना कर रहा है अन्य सैकड़ों के बीच खोया कोई एक तुच्छ व्यक्तित्व नहीं है। यह तो समूची पृथ्वी है जो उत्साह में भर तेरी अभीप्सा करती है।"

श्रीमाँ

## बोध विनोद सुरेन्द्रनाथ जौहर

### गंगा

नरक में जब भीड़-भड़का हो गया और हफड़ा-धफड़ी मची तथा लाठी चार्ज तक की नौबत आ गयी तो राजा भागीरथ को अपने पूर्वजों की बड़ी चिन्ता हुई जो नरक में थे। राजा भागीरथ ने लॉर्ड विष्णु से प्रार्थना की कि महाराज, दया कीजिये, कुछ उपाय कीजिये। भगवान विष्णु सोचने लगे कि यदि धरती पर से लोगों के आने की यही रफ्तार (Speed) रही तो नरक के हालात बहुत बिगड़ जायेंगे। इसका कोई उपाय धरती पर ही होना चाहिये। उन्होंने गंगा से पूछा कि यदि तुम्हें लोगों के पाप धोने के लिये धरती पर भेज दिया जाये तो क्या तुम्हें स्वीकार होगा और चली जाओगी।

गंगा ने तुरन्त स्वीकार कर लिया और बहुत खुश हुई कि स्वर्ग के बन्धन से छूट कर खूब सैर करने को मिलेगी। परन्तु कहने लगीं- मुझे उतारेगा कौन? मैं तो कभी घर से बाहर गयी नहीं और मेरा वेग सम्भालेगा कौन? लॉर्ड विष्णु कहने लगे कि इसकी तुम चिन्ता ना करो। हम शिवजी से अनुरोध करेंगे कि वे अपनी जटा के माध्यम से तुम्हें धीरे से (Softly) धरती पर उतार देंगे। गंगा बहुत उत्सुक थीं। दिन और घड़ी निश्चित हो गयी और गंगा धरती पर उतार दी गयीं।

गंगा भागती-दौड़ती, कूदती-फाँदती, पहाड़ों-चट्टानों से टकराती हुई, सुषमा भरी घाटियों और पर्वत श्रेणियों में उछलती हुई, रमणीक वन-उपवनों की सैर करती हुई मैदानों में पहुँचीं और बड़े-बड़े नगरों, कस्बों-गाँवों और खेत-खलिहानों को सींचती, हरे-भरे करती हुई आगे से आगे बढ़ती गयीं। धरती पर जब यह चमत्कार हुआ तो सब प्राणी लाखों-करोड़ों की संख्या में

अपने पापों को धोने के लिये आने लगे। सबको खूब आजादी मिली- जितना ही चाहे पाप कर लें और गंगा में स्नान करके सब धो डालें। और फिर वही आनन्द-नये-नये पाप करने का। यदि गंगा नहीं उतरती तो पापों के कारण सबको 84 लाख योनियों का चक्कर काटना पड़ता और घोर नरक की यातनाएं भी सहनी पड़तीं। इससे धरती पर ही पापों का निपटारा होने लगा और पापों से छुटकारा पाने का साधन घर बैठे मिल गया।

परन्तु गंगा पाप धो-धोकर थकने लगीं और परेशान होने लगीं। उनको दुविधा हुई कि यदि ऐसा ही चलता रहा तो मेरी क्या दशा होगी। कहीं मेरी पवित्रता ही ना नष्ट हो जाये और मेरा अस्तित्व ही ना समाप्त हो जाये। इस दुविधा में गंगा एक दिन लॉर्ड विष्णु के पास पहुँचीं और अपनी दुर्दशा का वर्णन करने लगीं।

भगवान् बहुत होशियार और व्यवहारकुशल (Tactful) थे। उन्होंने सोचा यदि गंगा वापस आ गयी तो उनकी परेशानियाँ बढ़ जायेंगी। इसलिये प्यार से समझाते हुये उन्होंने गंगा से कहा- तुम अब वापस तो नहीं आ सकती। संसार के लोगों के पाप धोने के लिये उनका उद्धार करने के लिये तुम्हें पृथ्वी पर ही रहना पड़ेगा। नरक में इतनी जगह कहाँ है और हमारे पास इतना साधन (Staff) कहाँ है कि हम हरेक पापी की 84 लाख योनियों का हिसाब रख सकें। नरक में भी अस्तव्यस्तता हो जायेगी, कार्यकुशलता घट जायेगी, सब हिसाब-किताब गड़बड़ हो जायेगा



और भ्रष्टाचार बढ़ जायेगा। इसलिये तुम्हारा धरती पर रहना अनिवार्य है।

इस पर गंगा बोली - महाराज ! आप मेरी दशा का भी तो ख्याल कीजिये। मेरा तो इस समय जीवन और मृत्यु का प्रश्न बन गया है। विष्णु भगवान् बोले- तुम चिन्ता मत करो। हम तुम्हें बहुत सरल तरकीब बताते हैं।

उन्होंने कहा - लाखों लोग जो स्नान करने आते हैं, उनमें कुछ साधु-सन्त, महात्मा, योगी, तपस्वी, सज्जन, भद्रपुरुष भी तो आते होंगे- तो कुछ पापों का बोझ उनके ऊपर डाल दिया करो और अपना बोझ हल्का कर लिया करो। वे अपनी तपस्या से, योग-साधना और धर्म से पुनः अपने-आपको शुद्ध और पवित्र कर लिया करेंगे। इससे एक यह भी बड़ा लाभ होगा कि स्वर्ग में भी हमारा काम हल्का हो जायेगा क्योंकि वे लोग धरती पर ही अपनी समस्याएं सुलझाते रहेंगे। गंगा यह सुनकर बहुत खुश हुई और निश्चिंत हो गयी। तब से मनुष्य जाति का उद्धार करने के लिये वह निरन्तर बह रही हैं और भगवान् का काम कर रही हैं।

### खाना

आज सवेरे से बीस आदमी मेरे पास आ चुके हैं और यही कहते हैं, "आपने खाना खाया"। मैं सबको जवाब देता रहा, "नहीं अभी तो नहीं खाया।"

पूछने वाले तो लगातार आते रहते हैं, खाना कोई नहीं लाता। एक मेरे शुभ-चिंतक भी आये

और पूछने लगे, "आपने खाना खाया, आप किस वक्त खाना खाते हैं?"

मैंने कहा-

'अमीर को जब भूख लगे,

फ़कीर को, जब मिल जाये।'

तो वह भी सुनकर हँसते हुये चले गये।

### हँसी-खुशी का झरना

(नलिन धोलकिया)

पहली बार चाचाजी के सामने गाने का अवसर आया। एक तो मेरा पहला कैम्प फिर दूर से ही दुर्गम दिखता चाचाजी का व्यक्तित्व। कतई उत्साहप्रद नहीं था यह संयोग। परन्तु करुणा दीदी धीरे-धीरे मेरा रास्ता तैयार करने में लगी थीं। उस समय चाचाजी पहली मंज़िल में एक दीवाने आम नुमा हॉल में रहा करते थे। लकड़ी का फर्श-उस पर रंगबिरंगी चादरें बिछा कर करुणा दीदी ने महफिल सजाई थी। एक कोने में पलंग पर चाचाजी मसनद के सहारे बैठे थे। ना छत्र था, ना सिंहासन। कोई चँवर भी नहीं ढुला रहा था। कहीं जय-जयकार नहीं। पर लग रहा था किसी शहंशाह का दरबार लगा है।

मैं हारमोनियम के पास बैठा कि चाचाजी ने पूछा, "अरे, यह काम भी कर लेते हैं? तब तो कमाल के आदमी हैं आप।" आँखों में झिलमिलाती, पारदर्शी चमक। आप चाहें तो अंदर तक झांक लीजिये और अकृत्रिम निर्दोष मुस्कान। वह अलंघ्य सी दिखती प्राचीर कहाँ गई?

मैंने कबीर का प्रसिद्ध पद 'हँसा यह पिंजरा नहीं तेरा', पूरी गंभीरता से गाया। 'ना घर तेरा ना घर मेरा, चिड़िया रैन बसेरा'-फकीरों को खुश करने के लिये इससे अच्छी थीम और क्या हो सकती है?

परन्तु गाना खत्म होते ही चाचा जी ने टिप्पणी की, "गा तो आप ठीक लेते हैं। पर ऐसा मनहूस, निराशा भरा गाना क्यों गाते हैं? दुनिया तो आनंद से भरी है। आनंद का हँसी खुशी का गाना गाया कीजिये।" आनंद? हँसी-खुशी? लोगों ने तो कहा था, "सावधान! बहुत ही कड़े मिजाज का, करीब-करीब दुर्वासा सा, क्रोधी स्वभाव का है यह फ़कीर। संभल कर रहना"।

पर यहाँ तो पहाड़ से झरना फूट रहा था। इस महफिल में कुक्कूजी माथुर और उनकी बहन ने भी बहुत सुन्दर गीत सुनाये। अंत में दीदी ने एक भजन गाया- "सुमिरन कर ले मेरे मना"- जिसकी पंक्तियाँ थीं, "रैन चंद्र बिना" आदि-आदि "तैसे प्राणी हरिनाम बिना रे"। इस पर चाचाजी की टिप्पणी थी, "सब फिजूल की पुरानी बातें हैं। अब तो गाओ - 'तैसे प्राणी बैक बैलेंस बिना रे...'। और फिर जम गई 'हास्य - योग' की महफिल।

रीवा वापस जाने के द्वार बंद हो रहे थे इसका मुझे होश ही ना रहा।

### दूध जलेबी

दूध जलेबी का मुझे बहुत शौक है। मुझे बहुत अच्छी लगती है। एक बार गया मैं अल्मोड़ा। जब बाजार में से निकला तो दुकान पर गरमागरम जलेबियाँ बन रहीं थीं। हाय! अगर गरम गरम गाय का दूध भी मिल जाता तो मैं दूध जलेबी खाता। मेरे मेजबान जो मेरे साथ बड़े मेहरबान थे। मेरी बड़ी कद्र और इज्जत करते थे। उन्होंने एड़ी चोटी का जोर लगा कर मेरे लिये गरम दूध का इन्तजाम किया और उसमें जलेबी डलवा कर मेरे सामने ले आये।

जब मेरे हाथ में दिया और मैं दूध पीने लगा तो देखा कि दूध तो उसमें है ही नहीं। मुझे बहुत निराशा हुयी और मैंने गिलास उठा कर एक तरफ रख दिया। मेरे मेजबान ने पूछा, "क्या हुआ?" मैंने झुंझला कर कहा, "मैंने तो आपसे दूध के लिये कहा था, आपने चकमा दिया। दूध तो इसमें है ही नहीं।" उन्होंने उठ कर गिलास में झाँका और कहा, "जनाब दूध तो सारा जलेबियाँ पी गयीं।" मैंने गुस्से में कहा, "तो फिर मैं क्या पिऊँ, दूध तो मैंने अपने पीने के लिये मँगवाया था जलेबियों के पीने के लिये तो नहीं।"

उनका चेहरा उतर गया। तुरन्त एक दूसरे सज्जन जो साथ में थे उन्होंने बुद्धिमत्ता जतलायी, "आप दूध पीने के बजाय चम्मच से जलेबियाँ खा जाइये तो जलेबियों जो दूध पिया है वह भी आपके अंदर ही चला जायेगा।"

तब मेरी समझ में आया कि डाक्टर लोग ठीक कहते हैं कि नींबू खाओ तो विटामिन 'सी' अंदर पहुँच जायेगा, पालक का साग खाओ तो लोहा, दूध पियो तो 'कैल्शियम' हड्डियों को बनाने वाला तत्व अंदर पहुँच जायेगा। इसी प्रकार सत्संग में बैठने से आत्मशुद्धि होती है, मिठास और आनंद मिलता है, आश्रम के वातावरण में रहने से आत्मा का विकास होता है, आत्मा को बल मिलता है और उँचे विचार उठते हैं।



## आश्रम में पिछले तिमाही के कार्यक्रम

### मातृ कला मंदिर का स्वर्णजयंति समारोह

दिल्ली स्थित श्री अरविन्द आश्रम द्वारा संचालित मातृ कला मंदिर ने पिछले दिनों अपनी स्थापना के 50 वर्ष पूरे किये। इस अवसर पर पाँच दिनों का एक सादगी भरा कार्यक्रम आयोजित किया गया। कार्यक्रम के अंतर्गत तानपुरे व तबले पर शास्त्रीय वादन की प्रस्तुति हुई। संगीत संध्या के अंतर्गत अनेक महान संगीतकारों व गायकों द्वारा भावपूर्ण गायन प्रस्तुत किया गया। ओडिशी नृत्य शैली में प्रस्तुत मातृ वंदना, कृष्ण लीला और कालिया नाग मर्दन की प्रस्तुति आकर्षक रही। भरतनाट्यम् नृत्य शैली में गणेश स्तुति, शिवतांडव और नाट्य आण्डवम् की प्रस्तुति की गई। वंदे मातरम् के भाव पूर्ण गायन के साथ इस पाँच दिवसीय संगीत नृत्य संध्या का समापन हुआ।

### 23 जून, 2017:

को कन्हैया लाल कन्हैया ने, जिन्हें आश्रमवासी प्यार से 'सरदार' कहकर बुलाते थे, अपना पार्थिव शरीर त्याग दिया। उन्होंने 40 साल तक आश्रम के रसोईघर में अपने कार्यों द्वारा सेवा की। उनकी दिवंगत आत्मा की शान्ति के लिये आश्रम में प्रार्थना सभा रखी गयी।

### तारा दीदी का जन्मदिन

5 जुलाई 2017- को तारा दीदी का जन्मदिन बहुत उत्साह पूर्वक मनाया गया। सुबह 8:15 से 8:30 तक ध्यान कक्ष में तारा दीदी ने श्री अरविन्द और श्री मां की पुस्तक "प्रार्थना और ध्यान" से कुछ पंक्तियाँ पढ़ी। इसी दिन आश्रम के एक वरिष्ठ कार्यकर्ता मल्होत्रा जी का भी जन्मदिन था। ध्यान कक्ष के बाहर तारा दीदी तथा मल्होत्रा जी ने एक-एक वृक्ष लगाया। और संध्या 03:00 बजे भोजन कक्ष में तारा दीदी द्वारा औरोविल में श्री मां के साथ बिताये गये व उनके अन्य चित्रों की प्रस्तुति की गई। तारा दीदी ने केक काटा और सबकी प्रेमपूर्ण बधाईयों के बाद आश्रम के प्रांगण में विभिन्न पौधे लगाने के साथ कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।



तारा दीदी अपने जन्मदिन पर वृक्षारोपण करते हुये

### 2 अगस्त 2017- 20 सप्ताह (200 hour) का योग प्रशिक्षण

कोर्स श्री अरविन्द आश्रम की दिल्ली शाखा में आरम्भ किया गया। योग प्रशिक्षण की कक्षाएँ 2 अगस्त से 15 दिसम्बर तक प्रतिदिन सोमवार से शुक्रवार 10 से 12:00 बजे तक होंगी।

### 13 अगस्त, 2017

प्रातः चाचा जी के जन्मदिन पर हवन किया गया। 10 बजे ध्यान कक्ष में श्री रमेश बिजलानी जी ने चाचाजी पर 'A Spriritual Biography' वार्ता प्रस्तुत की। संध्या ध्यान में प्रेमशीला जी ने भजन प्रस्तुत किये।

~

## श्री अरविन्द आश्रम (दिल्ली शाखा) के महत्वपूर्ण आध्यात्मिक दिवस

12 फरवरी : आश्रम स्थापना दिवस । सारे दिन समारोह ।

21 फरवरी : 'दर्शन दिवस' तथा श्री मां का जन्मदिन । सारे दिन समारोह ।

21 मार्च : श्री मां के पाँडिचेरी में प्रथमागमन दिवस की जयन्ती ।

4 अप्रैल : श्री अरविन्द के पाँडिचेरी में प्रथमागमन दिवस की जयन्ती ।

23 अप्रैल : मातृ अन्तर्राष्ट्रीय विद्यालय का स्थापना दिवस । समारोह प्रातः 8 बजे ।

24 अप्रैल : 'दर्शन दिवस' - श्री मां की पाँडिचेरी में अन्तिम रूप से आगमन जयन्ती ।

अप्रैल-जून : नैनीताल में 7 दिवसीय राष्ट्रीय एकता शिविर, युवा शिविर और अध्ययन शिविर

13 अगस्त : आश्रम के संस्थापक श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर 'फ़क़ीर' का जन्म दिवस ।

15 अगस्त : 'दर्शन दिवस' एवं श्री अरविन्द का जन्म-दिन । सारे दिन समारोह ।

2 सितम्बर : श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर 'फ़क़ीर' का समाधि दिवस ।

अक्टूबर : नैनीताल में 7 दिवसीय राष्ट्रीय एकता शिविर एवं युवा शिविर ।

-दीपावली - ज्योति उत्सव

17 नवम्बर : श्री मां का महासमाधि दिवस । मौन दिवस ।

24 नवम्बर : 'दर्शन दिवस' एवं सिद्धि दिवस । सायं 6 बजे मार्च पास्ट और सत्संग ।

5 दिसम्बर : श्री अरविन्द का महासमाधि दिवस । सत्संग प्रातः 10 और सायं 6:30 बजे ।

25 दिसम्बर : बड़ा दिन- "प्रकाश का अवतरण" ।

31 दिसम्बर : अर्द्धरात्रि ध्यान और कैलेंडर वितरण ।